श्रीः

मातृदर्शनम्

(श्री १०८ आनन्दमयीमातृवचनामृतसङ्कलनम्)

महामहोपाध्यायपण्डितमथुराप्रसाददीक्षितेन
गीर्वाणभाषया व्याख्यातम्

हिन्दीटीकया समलङ्कृतञ्च

तच्च

काश्याममरभारतीयन्त्रालये तेनैव मुद्रापयित्वा
प्रकाशितम्

मूल्यं रूप्यकत्रयम्

पता—व्यवस्थापक, श्री आनन्दमयी आश्रम, भदैनी, बनारस ।
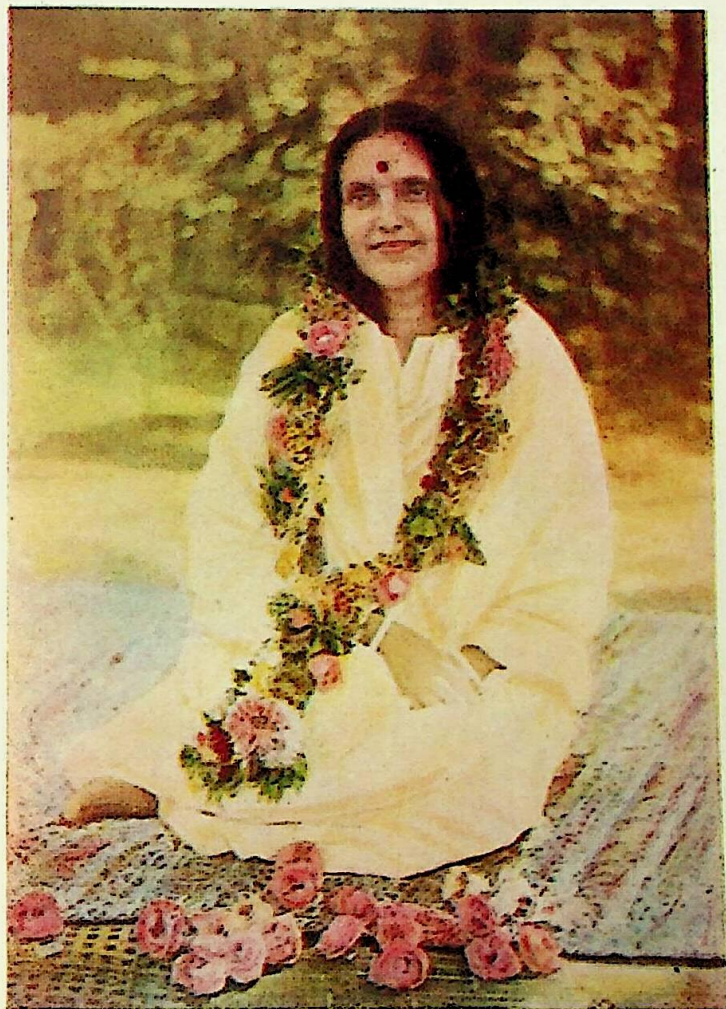
प्राक्कथन

भारत भूमि आध्यात्मिक तत्वों के विकास के लिए सर्वदा से ही ऊर्वरा रही है। कदाचित इसीलिए इसे अन्य देशवासी अध्यात्म-वादियों का देश कहते आये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार का अन्य भूभाग जब अविद्या की घोर निविड़ तमिस्रा में पड़ा था इस देश में आध्यात्मिक ज्योति जगमगा उठी थी। पुण्य सलिला गंगा तथा जमुनाकी पवित्र तलहटी में छोटे छोटे पर्ण कुटीरों अथवा सघन कुञ्जों की सुखद छाया में आर्य जीव और ब्रह्म की चर्चा में निरत थे।

जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, और इस जगत से सम्बद्ध उनकी नित्य की साधारण बातचीत या ज्ञानचर्चा ही हमारे भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि है। भारतीय प्राच्य दर्शन कितना समुन्नत एवं प्रौढ है यह विद्वानों से अविदित नहीं है। समय समय पर विभिन्न आचार्यों के विभिन्न सिद्धान्तों ने ही विभिन्न दर्शनों का जन्म दिया है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे दर्शन शास्त्र की इयत्ता अथवा पूर्णता किसी निश्चित परिधि तक ही है या हो सकती है। आज भी इस प्रकार का कोई अभिनव प्रयास कुछ कम गौरव नहीं रखता।

दर्शनसाहित्यभण्डार के लिए प्रस्तुत पुस्तक मातृदर्शन जिसकी चर्चा मैं आप से करना चाहता हूँ महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसादजी दीक्षित सोलन राजगुरु की सर्वथा नूतन कृति है। इस में सभी दार्श-निक सिद्धान्तों का विद्वत्ता पूर्ण ढंग से सुन्दर समन्वय किया गया है। मातृ दर्शन में केवल आठ मन्त्रों की व्याख्या विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से विस्तृतरूप में की गयी है। इन मन्त्रों को आप पढ़ेंगे तो निश्चय

ही एक बार यह कहे बिना नहीं रहेंगे कि इनका कुछ भी अर्थ प्रतीत नहीं होता परन्तु यदि इनका कुछ अर्थ नहीं है तो इनकी व्याख्या में इस पुस्तक के सैकड़ों पृष्ठ काले क्यों किए गये हैं ? यह भी एक विचारणीय समस्या है।

इन मन्त्रों की कुछ ऐसी ही विशेषता है या कुछ अपूर्व रहस्य ? कि सर्वप्रथम धर्ममार्तण्ड सोलन नरेश जी ने जब संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान उक्त महामहोपाध्याय जी से इन मन्त्रों की व्याख्या करने के लिए अनुरोध किया तो इनको आपाततः पढ़कर और निरर्थक सा जान कर विचारमग्न से हो गये। फिर कालान्तर में कुछ अर्थ करने का प्रयास किया परन्तु पूर्ण सफलता न मिलने पर कुछ निराशा सी प्रकट की। अन्ततो गत्वा इन मन्त्रों के साक्षात् द्रष्टा ऋषि की अभ्यर्थना के अनन्तर पण्डित जी की कुशाग्र बुद्धि ने सर्वथा पूत होकर इनमें प्रवेश किया और व्याख्या ही नहीं प्रत्युत वह बृहद् भाष्य कुछ ही दिनों में तैयार किया जिसे देखकर आज स्वयं इस का भाष्यकार भी स्तब्ध और चकित है। साधारण संस्कृत पण्डितों की बुद्धि और शक्ति से परे का यह कार्य महामहोपाध्याय जी की असाधारण ज्ञानगरिमा का परिचायक है।

इन मन्त्रों का अर्थ करने में शब्दों के निष्पादक धातु प्रत्यय आदि के विचार में विचित्र तर्क और ऊहापोह से काम लिया गया है। इस प्रयास को देखते ही भाष्यकार की उक्ति "एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति" की स्मृति हरी होजाती है। निश्चय ही संस्कृत का प्रत्येक शब्द कामधुक् है, उससे अपनी इच्छानुसार चाहे जितना भी अर्थ निकाला जा सकता है। परन्तु यह सर्व साधारण का कार्य नहीं है इसे पण्डित जी जैसा असाधारण बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है।

वेद के मन्त्रों के साथ हम "ऋषयो हि मन्त्रद्रष्टारो भवन्ति"

सुनते और पढ़ते हैं और साथ ही आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व के उस वैदिक युगकी कल्पना भी करते हैं जब हमारे पूर्वज महर्षियों ने वैदिक मन्त्रों का अपने अन्तः करण में साक्षात किया था। न जाने वह कैसी शुभ पावनवेला थी जब सर्व प्रथम ऋषि के कण्ठ से "अग्निमीले पुरोहितम्" की कोमल कान्त पदावली फूट पड़ी होगी। परन्तु आप को यह जान कर आश्चर्य न होना चाहिए कि इस घोर कलिकाल में भी हमारे बीच ऐसे ऋषियों और महर्षियों की कमी नहीं है जिनके पवित्र अन्तः करण से बहुजन-हिताय वाणी समय-समय पर उच्चरित होती रहती है।

मातृ दर्शन के मन्त्र भी एक ऐसी ही परम पूजनीया साक्षात् जगदम्बा योगिनी आनन्दमयी माँ की समाधि अवस्था में उनके श्री-मुख से उच्चरित हुए हैं। हमारे सौभाग्य से आज भी यह योगिनी माँ हमें अपने बहुमूल्य सदुपदेशों और सुभग दर्शनों से कृतार्थ कर रही हैं।

सन् १९४६ के ग्रीष्म की बात है। मैं संस्कृत वाङ्मय विश्वकोश के सम्पादन कार्य से सोलन-शिमला गया था। अकस्मात मुझे एक दिन विदित हुआ कि एक योगिनी माँ सोलन में पधारने वाली हैं। माँ का शुभागमन हुआ। सन्त पुरुषों तथा महिलाओं से स्थानीय तारिणी संस्कृत महाविद्यालय का कोना कोना भर गया। अतः वहाँ स्थानाभाव से मुझे विद्यालय के पार्श्व में ही भगवान् के मन्दिर में आश्रय मिल गया था। माँ जहां रहती थी वह स्थान मन्दिर से बिल्कुल लगा हुआ था। माँ की दिव्यमूर्ति के प्राथमिक दर्शन से ही मैं इतना प्रभावित होगया था कि तदनन्तर नित्य अन्य आवश्यक कार्यों को रोक कर भी वहाँ जाने का अभ्यासी बन गया था।

इस के बाद सोलन और काशी में माँ का अनेक वार दर्शन करने का सौभाग्य हुआ है। माँ के दर्शनों से एक अद्भुत प्रकार की शान्ति मिलती है और हृदय में भगवद्भक्ति का अजस्र स्रोत उमड़ पड़ता है।

यही कारण है कि आज भारत के कोने कोने में धनी मानी, राजा महाराजा तथा उच्च कोटि के विद्वान व्यक्ति माँ के एक वार के दर्शन और कुछ सत्संग से ही अनन्य भक्त बन गये हैं। संसार के विविध तापों से सन्तप्त जीव के लिए माँ का सुभग दिव्य दर्शन तथा सामीप्य एक शान्त तथा सुखप्रद आश्रय है जहाँ सांसारिक बाधाएँ उसे सता नहीं सकतीं। अतः मां के निकट जिसे जितना ही अपने जीवन का अमूल्य क्षण बिताने का अवसर प्राप्त होता हैं वह उतना ही धन्य है।

माँका संक्षिप्त परिचय

माँ का जन्म तथा बाल्यकाल

श्री आनन्दमयी माँ का जन्म श्री सं० १९५३ वि० ज्येष्ठ कृष्ण ३ गुरुवार तदुपरान्त चतुर्थी को ज्येष्ठा उपरान्त मूल नक्षत्र में रात्रि को त्रिपुरा जिला के खेउड़ा ग्राम में हुआ। उनके पिता स्व.विपिनविहारी भट्टाचार्य और माता श्री मोक्षदासुन्दरी या विधुमुखी देवी उनदिनों अपना गाँव विद्याकूट छोड़कर खेउड़ा में रहते थे। यहाँ विपिनबाबू का ननिहाल था।

माता जी अपने पिता की दूसरी सन्तान हैं। आपका बचपन का नाम निर्मलासुन्दरी है। इसके अतिरिक्त जैसा कि कुलीन घरों में होता है आपके तीर्थवासिनी, दाक्षायनी, गजगंगा, विमला और कमला पाँच उपनाम भी थे। आनन्दमयी आपका नाम ढाका के बाबू ज्योतिषचन्द्र राय ने रखा था और तभी से आपका यही नाम हो गया। माता जी की बहनों का नाम सुरबाला और हेमलता तथा भाई का नाम माखन है।

माता जी की विचित्रता बचपन से ही दिखाई पड़ने लगी थी। वह बचपन से ही बड़ी हँसमुख थीं अतः सभी उनसे प्यार करते थे। माता जी अपनी माँ को कभी रोने नहीं देती थीं। उस अबो-

धावस्था में भी उन्हें ज्ञान था। एक दिन बातचीत के प्रसंग में उन्होंने अपनी माँ से कहा— 'माँ' मेरे जन्म के तेरहवें दिन श्रीनन्दन चक्रवर्ती देखने आए थे न ?' यद्यपि उन्हें इसकी ठीक याद न थी परन्तु पीछे उन्हें भी याद हो आई।

कीर्तन में प्रथम भाव

बचपन से ही माता जी को समाधि सी लगजाती थी। दो वर्ष दस महीने की अवस्था में माता जी की माँ उन्हें अपनी गोद में लेकर अपने पड़ोसी श्री चन्द्रनाथ भट्टाचार्य के घर कीर्तन में गईं। कीर्तन की मधुर ध्वनि कानों में पड़ते ही माता जी की कुछ विचित्र सी दशा हो गयी और भावावेश में वहीं गिर पड़ीं। उनकी माँ ने समझा बच्ची सो रही है और औरोंको भी यह रहस्य न खुला। माँ बचपन में जब मन्दिरों में मूर्तियों का दर्शन करने जातीं तो एकटक घण्टों उन्हें देखा करती थीं। मूर्तियों में साक्षात् देवताओं का दर्शन उन्हें मिलता था।

शिक्षा

माँ का लिखना पढ़ना बहुत ही साधारण तौरपर हुआ। माँ को जो कुछ भी सिखाया जाता, वे झट सीख लेती थीं। पढ़ने में उनका मन नहीं लगता था ; पर अध्यापक के सम्मुख पढ़ते समय न जाने कैसे सब ठीक ठीक हो जाता था।

गृहस्थाश्रम

सन् १९०९ में माघ में १२ वर्ष दस महीने की अवस्था में माँ का विवाह विक्रमपुर के आटपाड़ा ग्राम निवासी रमणी मोहन चक्रवर्ती से हुआ। पीछे से भक्त लोग उनको भोलानाथ के नाम से पुकारने लगे और इसी नाम से वे प्रसिद्ध हो गए।

विवाह के समय भोलानाथ जी पुलिस विभाग में काम करते थे। कुछ ही दिनों बाद स१९०९ के भादों महीने में उनकी नौकरी छूट

गयी। तत्पश्चात् कई वर्ष वे बेकार रहे। इन दिनों माँ चार वर्ष तक अपने बड़े जेठ बाबू रेवती मोहन के पास रहीं।

जेठ के घर माँ घर का सारा काम अपने हाथ से करती थीं, जेठ की सेवा खूब करती थीं और एक योग्य वधू के करने योग्य सभी काम कर लेती थीं। उस समय भी बीच बीच में उनको भावावेश होजाता था। कभी कभी रसोई बनाते समय समाधिस्थ हो जातीं और दाल भात जल जाता था। जेठानी समझतीं बहू सो गई थीं अतः बुरा भला सुनने के बाद वह फिर काम में जुट जातीं और रसोई बनाने लगती थीं।

अष्टग्राम सन् १६१४ — भाव के प्रथम रूप — अष्टग्राम में जयशंकर सेन महाशय के बाड़े में माँ और भोलानाथ रहते थे। उनकी स्त्री ने माँ का नाम 'खुशी की माँ' रखा था। उनका लड़का शारदा सेन माँ को बहन मानकर बड़ी भक्ति करता था। एक दिन अपने घर में वह भागवत का पाठ करता था। कई और स्त्रियों के साथ माँ भी लम्बा घूँघट खींचे भागवत सुनने लगीं। पाठ प्रारम्भ होते ही माँ का शरीर बेकाबू सा होने लगा। कम्प होने लगा। कहीं औरों का ध्यान इधर न खिंच जाय — इस भय से माँ धीरे से वहाँ से दीवार के सहारे बाहर चली गयीं। जब लोगों ने देखा कि भागवत की कथा सुनने से उनकी यह दशा हो गई है तो उनकी माँ के प्रति प्रगाढ़ भक्ति उत्पन्न हुई। तब से माँ जब कभी भागवत या कोई भक्तिग्रन्थ पढ़तीं या सुनतीं जोरों से भाव हो जाता।

पूर्ण ब्रह्म नारायण

निशिकान्त भट्टाचार्य नाम के एक मेरे भाई थे। वे माँ से १०-११ वर्ष बड़े थे। माँ उनका बहुत आदर करती थीं। माँ के इन सब आसनों और क्रियाओं पर ध्यान देने के लिए वे भोलानाथ जी

पर विगड़ते थे। दीक्षा के पाँच छः दिन बाद वे एक दिन भोलानाथ जी को फटकार रहे थे कि यह सब ठीक नहीं है। माँ उस समय घूँघट काढ़े हुए कमरे के एक कोने में बैठी हुई थीं। यह सुनते ही उनका भाव सहसा बदल गया — आसन लगाकर बैठ गयीं। धोती शिर से गिर पड़ी। बाल बिखरे हुए थे। कुछ मुँह भी खुल गया था। पर उस समय लज्जा कहाँ? बड़े भाई की ओर देखकर गरज कर कहा — 'क्या कह रहा है रे ?'

निशिबाबू डर से चौंककर पीछे को हट गए। माँ ने उसी रूप में पर कुछ हँस कर, उनका मुँह बायें हाथ से छू कर पहले अत्यन्त मृदु स्वर में कहा — डर गया ? डर मत, डर मत।

तब साहस करके उन्होंने पूछा — "आप कौन हैं ?"

माँ स्वर से कहा — "पूर्ण ब्रह्म नारायण"।

तब सबने माँ से कहा — अच्छा तो कुछ परिचय दीजिए।

माँ ने खड़ा होकर भोलानाथजी के सिर से पाँव तक अपनी उँगली फेर दी। उन्हें एकदम समाधि लग गई। आंखें ऊपर को चढ़ गईं। एक घंटा हो गया। सब लोग चुपचाप और भयभीत थे। जानकी बाबू ने विनीत भाव से माँ से भोलानाथ जी को ठीक करने को कहा। तब माँ ने फिर भोलानाथ जी को अपनी उँगली से छू दिया— समाधि खुली और कहने लगे — अरे मैं कहाँ था, कितना आनन्द था, वर्णन नहीं कर सकता।

विभिन्न लीलाएँ

मां का आजतक का सारा जीवन नाना विचित्रताओं से भरा है। शरीर में कब कौन सा भाव प्रादुर्भूत हो जायगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। अनेकों बार सहसा मां के श्वास प्रश्वासों की गति तीव्र हो गई है और सारा शरीर काला पड़ गया है। नाड़ी

शिथिल हो गई है फिर थोड़ी ही देर में शरीर स्वस्थ हो गया है। मां के अनन्य भक्त जिस भाव और इच्छा से उनके पास आये, पूरी हो गई। कितनों का असह्य रोग और संकट उन्होंने स्वयं लेकर उनको उनसे मुक्त कर दिया है। कभी अनायास ही किसी पर उनकी विशेष कृपा हो गयी है और कभी आर्त होकर रोते रहने पर भी उधर देखा तक नहीं है। दैवी प्रेरणा जब जैसी होती है शरीर में वैसे ही भाव स्वयं उद्भूत हो जाते हैं।

कीर्त्तनमें भाव

हरि नाम की ध्वनि कानों में पड़ते ही शरीर में नाना भावों का संचार होने लगता है। कभी कभी इस भावावस्था में शरीर लम्बा हो जाता, कभी बिल्कुल छोटा, कभी गोल पिन्डी बन जाता, मानों शरीर में हड्डी है ही नहीं। कभी भावोन्माद की तरंग में कांप उठता और कभी ऐसा पुलकायमान होता कि सूजा सूजा सा और लाल हो जाता। शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते। कभी इतनी हंसी कि रोकने पर भी न रुके और देखने पर भय हो जाता। कभी ऐसा रोना कि आंखों से निरंतर अश्रु धारा की झड़ी लग जाती और उनमें सूजन आ जाती।

भ्रमण—मां निरंतर एक स्थान पर नहीं रहतीं। उत्तरी भारत में भ्रमण करती रहती हैं। अलमोड़ा, बरेली, मथुरा, वृन्दाबन, दिल्ली, सोलन, देहरादून, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी, विन्ध्याचल, कलकत्ता, ढाका, अहमदाबाद आदि स्थानों में अधिकतर जाती हैं। जो लोग दर्शनों के लिये आते हैं उनको अमूल्य उपदेश देती हैं। माँ का सारा समय हरिकीर्तन और भगवद्भक्ति चर्चा में ही व्यतीत होता है।

—(माँ की जीवनी से)

इन पंक्तियों के लिखने के साथ ही इस पुस्तक के लेखक महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसाद जी दीक्षित, सोलन राजगुरु के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। आपने अब तक अपने दीर्घ जीवन काल में संस्कृत साहित्य की निरंतर सेवा की है आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि ये वृद्धावस्था की इस विश्राम वेला में आज अपनी सत्तर वर्ष की अवस्था में भी बड़ी लगन के साथ इस कार्य में रत हैं। वर्तमान देश काल में संस्कृत के विद्वानों में इतनी दीर्घ आयु में स्वस्थ चित्त के साथ नित्य नये मौलिक ग्रन्थों के लिखने की चिन्ता और क्षमता रखने वाले आप गिने चुने व्यक्तियों में से ही हैं।

आपने 'वीर प्रताप' 'शंकर विजय' 'पृथ्वीराज' और 'भारतविजय' जैसे अनेकों मौलिक नाटक ग्रन्थों की रचना की है।

भारत विजय नाटक नाटकसाहित्य में आपकी अभिनव रचना है। इस ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटक में अंगरेजों का भारत में व्यापारिक रूप में प्रवेश, बिहार और बंगाल के भारतीय व्यवसाय का शोषण, जुलाहों का अंगूठा कटवाना, कूटनीति से अंगरेजी राज्य की स्थापना एवं विस्तार, भारत के राजा महाराजा तथा नवाबों के साथ छल कपट का व्यवहार तथा अत्याचार, सन् ५७ का भारवीय स्वातंत्र्य युद्ध, झांसी की रानी की वीरता, देश की जागृति, कांग्रेस की स्थापना, असहयोग अन्दोलन, जलियान बाग का हत्याकाण्ड, सत्याग्रह एवं अहिंसा की सफलता, और महात्मा जी के नेतृत्व में नेताओं के हाथ में विवश होकर अंगरेजों द्वारा भारतीय सत्ता समर्पित कर भारत छोड़ने का दृश्य दिखाया गया है।

इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह स्वराज्य प्राप्ति से ठीक दस वर्ष पूर्व लिखा गया है। परन्तु समय अनुकूल न होने से

सोलन राज दरबार द्वारा मूल पुस्तक जब्त कर ली गई थी। सन् १९४६ में कांग्रेस का अभ्युदय होने पर पुस्तक वापिस मिली और यू० पी० सरकार द्वारा २००) की प्रकाशनार्थं सहायता और कागज का आदेशपत्र १५ अगस्त सन् ४७ से पांच मास पूर्व ही मिल गया था।

इसके अतिरिक्त आपने व्याकरण में पाणिनीय सिद्धान्त कौमुदी और कामशास्त्र में केलिकुतूहल भी लिखा है। पाणिनीय सिद्धान्त कौमुदी वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी का परिष्कृत एवं संक्षिप्त रूप है। इसमें प्रत्युदाहरण, फक्किका और अनावश्यक वृत्ति को स्थान नहीं दिया गया है। अतः वर्तमान सिद्धान्त कौमुदी से इसका कलेवर बहुत छोटा आधा मात्र रह गया है। संस्कृतानुरागी जनों तथा स्वाध्याय प्रेमी छात्रों के लिए उक्त पुस्तक संग्राह्य है।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक मातृदर्शन भगवद्भक्तों एवं अध्यात्म-ज्ञान-पिपासुओं के लिए हितकर एवं सर्वथा उपादेय होगी।

श्रावणी सं० २००६]—साहित्याचार्य श्री रामबहादुर त्रिपाठी

श्रीः

नैवोक्तं कलुषौघनाशनपरं नामाऽपि लक्ष्मीपते—
गायत्रीं सततं नवाऽपि जपता पूतीकृताऽसौ मया ॥
सत्यासत्यविमिश्रिता च बहुशः प्रोच्चारिता गीर्यया ।
सेदानीं रसना त्रिविक्रमपदं प्राप्यैव सन्तिष्ठते ॥ १ ॥
पदे त्वदीये विनिवेश्य चित्तं प्रक्षालये त्वत्पदधावनेन ।
ततो विशुद्धां विनिगूहितार्था वाणीं भवत्याः सुपरिष्करोमि ॥२॥

इह हि संसारे सर्वभविकजनोद्धरणाय विविधरूपेण साक्षादेव समुपगच्छति भगवान् करुणामूर्तिः । स च कदाचित् पुंरूपेण कदाचित् स्त्रीरूपेण कदाचिच्च तेजोमयब्रह्मस्वरूपेण च उपदिशति चायं यथासमयमुपदेशान् । भगवद्गीताप्रभृतयो यदुपदेशाः सर्वतो विश्वजनीना एवेति नातितिरोहितं कस्यापि विपश्चिद्वरस्य । तेजोमयब्रह्मस्वरूपप्रादुर्भावस्तदुपदेशाश्चागमादौ बहुषु स्थानेषु वर्णिताः समुपलभ्यन्ते । स्त्रीरूपेण जायमानस्य ब्रह्मणो वर्णनं पुराणोपनिषदादावपि स्फुटमेवोपलभ्यते । यथा चोपनिषदि—"ननु त्वं स्त्री त्वं पुमान् त्वं वृद्धो जीर्णो दण्डेन वञ्चसी" त्यादि । कालीभगवत्यादिशिवविष्णुसाक्षात्कारस्तु पुराणगतत्वाद्भवतु पुराणः परमस्मिन् कलिकालेऽपि भामाखेपा-स्वामिविशुद्धानन्द-गौराङ्गमहाप्रभु-राधावल्लभ

स्वामितैलङ्गमहाराजादिप्रभृतीनां साक्षादेव लोकोत्तरचमत्कारवतां सदुपदेशैः को वा भगवच्चरणारविन्दमनस्कः स्वात्मोद्धारपरायणो नास्ति परिचितः ।

मेरी जिस जिह्वा ने कभी कलियुगकल्मषहारी श्रीभगवान् का नाम नहीं लिया और जो निरन्तर गायत्री मन्त्र के जप द्वारा अभी तक पवित्र नहीं हुई थी प्रत्युत जिसने दिन रात अनेकों बार किंचित् सत्य से मिली हुई मिथ्या वाणी का उच्चारण किया। आज मेरी वही जिह्वा श्रीभगवान् के चरणों को पाकर उसमें लिपटी हुई है। तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान के चरणों की लालिमा स्वतः नहीं है अपि तु उसमें निरन्तर जिह्वा के लिपटे रहने से ही लालिमा दिखाई देती है ॥ १ ॥

मातः ! सर्व प्रथम मैं अपने दूषित चित्त को तुम्हारे चरणों में लगा कर उसके प्रक्षालन के जल से पवित्र करता हूँ फिर स्वच्छ चित्त से तुम्हारी सुस्पष्ट परन्तु अत्यन्त गूढ़ार्थ वाणी की व्याख्या करता हूँ ॥ २ ॥

इस संसार में सभी सांसारिक जीवों के उद्धार के लिए करुणा-मूर्ति भगवान् स्वयं आते हैं और समय समय पर उपदेशों द्वारा पथ भ्रष्ट जीवों को सन् मार्ग पर लाते हैं। यह तो किसी भी विद्वान् से छिपा नहीं है, कि भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीताप्रभृति जो कुछ भी उपदेश दिया है वह हर प्रकार से, अखिलविश्वकल्याणकारी है। उस तेजोमय ब्रह्म के स्वरूप का प्रादुर्भाव और उसके उपदेश उपनिषद् आदि ग्रन्थों में अनेकों जगह पाए जाते हैं। स्त्रीरूप से संसार में अवतीर्ण होने वाले ब्रह्म का वर्णन पुराण और उपनिषद आदि में स्पष्ट रूप से पाया जाता है। जैसे उपनिषद् में—"तू ही स्त्री हो, देवी रूप में, तू ही पुरुष हो, वामनादि रूप में और तू ही अतिवृद्ध हो दण्ड

किं बहुना अद्य श्वो ऽपि भविकजनोद्धरणाय श्रीमत्या आनन्दमयीमातुः स्वरूपेण साक्षादेवागतवान् परमात्मा, यदुपदेशाः कदाचिदेव पूर्णस्वरूपतायां तस्याः समुपजायन्ते। सर्वमतावलम्बिषु समानतयैव समुपदिशतीति तद्वचसां महदेव वैचित्र्यम्। तानि चैवम्। तेषु इदं वचनम्।

एहि भावनायं भायं एहि यं संतानितायम्।

भावमयं भवभयहरणं हे यस्मिंस्त्वहं भागपो हं वां क्रीं आं हे ॥ १ ॥

टीका-"एहीति" हे इति सम्बोधने, जीवं भक्तं वा सम्बोध्य कथयति किं कथयतीति दर्शयति। त्वं भावनायम् एहि। अयं भावः। भावेन पुनः पुनः परिशीलनेन अयते प्राप्नोतीति तम्। सततयोगाभ्यासबलात् योगिगम्यम् ईश्वरम् एहि प्राप्नुहि। सांख्यमते हि सततभावनया प्रकृतिजीवयोः सर्वथा भेदोपगमात्कर्मक्षयः, तदनु च स्वस्वरूपस्यात्मनो विकाशान्मोक्षः इति तं स्वस्वरूपात्मानमेहीत्याशयः।

योगमतेऽपि चित्तवृत्तिनिरोधोपगतेन योगेन समागतं स्वप्रकाशमानमात्मानमेहि, तदेव ते सुखस्थानं भविष्यतीति न मे विप्रति-

---

लेकर वञ्चना भी करते हो।" इत्यादि। काली भगवती आदि तथा शिव और विष्णु का साक्षात्कार पुराणों में वर्णित होने से पुराना कहा जा सकता है; परन्तु इस कलिकाल में भी साक्षात् लोकोत्तर चमत्कारवाले श्रीभामाखेपा, स्वामी विशुद्धानन्द, गौराङ्गमहाप्रभु, राधावल्लभ, स्वामी तैलङ्गमहाराज प्रभृति महात्माओं के सदुपदेशों से कौन ऐसा आत्मोद्धार में लगा हुआ, भगवच्चरणारविन्दों में अनुराग रखने वाला व्यक्ति है जो परिचित नहीं है।

पत्तिः। प्रकारभेदेऽपि सर्वेषां प्राप्तिस्थानमेकमेव। सुखस्यैव सर्वेषामपि मते ध्येयत्वात्।

उक्तं हि—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ इति ॥

बहुत अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है आजकल भी सांसारिक जीवों का उद्धार करने के लिए श्रीभगवान् ने श्रीमती आनन्दमयी माता के रूप में इस संसार में अवतार लिया है।

श्रीमती आनन्दयीमाता के सदुपदेशों का सबसे वड़ा वैचित्र्य यह हैं कि उन्होंने सभी मतावलम्बियों के लिए समान रूप से उपदेश दिया है। वे इस प्रकार हैं। उनमें प्रथम वचन यह है—हे जीव ! योगियों को निरन्तर योगाभ्यास से मिलने वाले ईश्वर को अनवरत अनुशीलन द्वारा प्राप्त करो। सांख्य के मतमें निरन्तर भावना प्रकृति और जीव का भलीभाँति भेद ज्ञान हो जाने पर कर्मक्षय हो जाता है। तत्पश्चात् स्वस्वरूप आत्मा का विकाश होने से मोक्ष हो जाता है। इस प्रकार तू स्वस्वरूप आत्मा को प्राप्त करो। योग के मत में भी चित्तवृति का निरोध ही योग कहा जाता है। अतः इस प्रकार योग द्वारा प्राप्त होने वाले स्वतः प्रकाशमान आत्मा को प्राप्त करो। इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं कि वही तेरे सुख का स्थान होगा। उसको प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग होने पर भी सभी के लिए एक मात्र वही प्राप्तिस्थान है। अर्थात् सभी का लक्ष्य वहाँ तक पहुँचना ही है क्योंकि जीवमात्र का लक्ष्य सुख है और उस सुख का स्थान वह आत्मा है।

यद्वा भावनया आयः प्राप्तिर्यस्य सः तम् । भावनैकमात्रगम्यत्वात्तस्येत्यर्थः । सर्वव्यापकत्वेन सर्वत्र विद्यमानत्वे ऽपि तस्य प्रतीकोपासनावत् शालग्रामशिलादौ यथा भावनयोपास्यमानस्य भगवतः प्राप्तिर्भवति, एवमेव भावनैकमात्रगम्यत्वात्साकाररूपेणाप्युपासितुं यो योग्यो भवति तम् एहि । पाषाणादिप्रतिमायां प्राणप्रतिष्ठादिसमनन्तरमयं रामो विष्णुः कृष्णो वेति भावना समुपजायते, ततः पूर्वं तु पाषाणमेवेति न पाषाणप्रतिमायां पाषाणपूजनम् । न खलु तथाभूतायां प्रतिमायाम् अयं रामः रामसदृश इति भावना भवति, न वा न रामोऽयमिति भावना भवति । किं तु अभेदभावनया अयं रामः राममहं पूजयामि सत्करोमीत्यादि । एवं च भावनया साकाररूपेणाप्युपासितुं यो योग्यो भवति तम् एहीति भावः । स च प्राणप्रतिष्ठानन्तरमेवोपासितुं योग्यो भवति ।

कहा भी गया है कि वेदत्रयी, सांख्य, योग, शैव तथा वैष्णव मत आदि विभिन्न मार्गों के द्वारा वहाँ तक पहुँचा जा सकता है । इस प्रकार सभी मनुष्य रुचिभेद से अपनी अपनी रुचि के अनुसार मेरे लिए यह मार्ग हितकर होगा और मेरे लिए वह मार्ग कल्याणकर होगा ऐसा संकल्प कर सीधे और कुटिल अनेक मार्गों पर चलते हुए अपने उस एक मात्र लक्ष्य तक पहुँचते हैं । जैसे कि जल सीधे टेढ़े अनेकों मार्गों से बहता हुआ अन्त में समुद्र में ही पहुँचता है ॥इति॥

अथवा भावना के द्वारा जिसकी प्राप्ति होती है उसको प्राप्त करो ; क्योंकि वह एकमात्र भावना से ही प्राप्त किया जा सकता है । ईश्वर सर्वव्यापक है अतः सब जगह विद्यमान होने पर भी उसके प्रतीक की उपासना का सिद्धान्त मान कर जैसे भावनामात्र से उपास्यमान

वैदिकमन्त्रप्रभावबलेन सर्वव्यापकस्येश्वरस्य तत्र विशेषरूपेणाव-स्थानात् उपासितुं योग्यो भवति । प्रतिपादितं चैतद्वेदे-"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" । इत्यादि । एवं च पाषाणादिप्रतिमास्वपि प्रतिष्ठानन्तरं विशेषतया तत्रेश्वरस्यावस्थानात् तम् एहि, ततश्च ते सुखं भविष्यतीति भावः ।

यद्वा भावनया-प्रकृत्यनुकूलभावनया सत्त्वरजस्तमोरूपप्रकृत्यनुगत-गुणप्राधान्यात्तत्तद्गुणविशिष्टविष्णुचतुराननशिवशक्त्यादिभावनया आयः प्राप्तिर्यस्य तम् । अयं भावः—प्रकृतौ सर्वगुणानां सत्त्वेऽप्याधिक्यात्तथा व्यवहारः । सत्त्वगुणाधिकविशिष्टः पुरुषः सत्त्व-गुणविशिष्टं विष्णुं भावयति, तद्भावनया च विष्णुसाक्षात्कारस्त-माप्नोति । रजोगुणविशिष्टो रजोगुणविशिष्टं देवं कृष्णं भावयति ।

भगवान् की प्राप्ति शालग्राम शिला आदि में होती है इसी प्रकार ही भावनामात्र से प्राप्त होने वाले एवं साकार रूप से उपासना करने के योग्य उस ईश्वर को प्राप्त करो । पत्थर आदि से बनी मूर्तियों में प्राणप्रतिष्ठा होते ही 'यह राम है, विष्णु है अथवा कृष्ण है ऐसी भावना उत्पन्न हो जाती है । प्राणप्रतिष्ठा के पहले तो वह पत्थर ही होता है अतः ऐसी दशा में पत्थर की मूर्ति में पत्थर की पूजा नहीं होती । क्योंकि ऐसी मूर्ति में "यह राम है अथवा राम के सदृश है" यह भावना-नहीं होती है और न तो यह राम नहीं है' यही भावना होती है, किन्तु प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् "अभेद भावना से यह राम है, मैं राम की पूजा करता हूँ तथा सत्कार करता हूँ" ऐसी बुद्धि होती है । इस प्रकार भावना के द्वारा साकाररूप से उपासना करने के योग्य उसको प्राप्त करो । वह प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् ही उपासना करने योग्य होता है ।

एवमेव तमः प्रधानप्रकृतिविशिष्टः पुरुषः संहारकारकतया तमोगुण-विशिष्टं शिवं भैरवं वा आराध्नोति। तदाराधनया च शिवस्य भैरवस्य वा साक्षात्कारो भवति, तेन च आराधकस्याभीष्टसिद्धिः, तस्माद् भावनायम् एहि। यथा ते प्रकृतौ प्रतिभाति तथैव एहि। स्वप्रकृत्यनुकूलभावनया तवाभीष्टसिद्धिर्भविष्यतीति भावः।

क्योंकि वैदिक मन्त्र के प्रभाव के बल से सर्वव्यापक ईश्वर का उस प्रतिमा में विशेष रूप से प्रतिष्ठान हो जाने से वह उपासना के योग्य हो जाती है। यह वेद में कहा भी गया है कि—"ईश्वर अपनी माया से अनेक रूप धारण करता है," इस प्रकार पाषाणनिर्मित प्रतिमा में भी प्राणप्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात् वहाँ ईश्वर की विशेष रूप से स्थिति होने के कारण उसकी उपासना करो। इससे तुझे सुख होगा।

अथवा प्रकृति के अनुकूल भावना से अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुणों में से एक एक के प्रधान होने पर उस गुण से विशिष्ट विष्णु, ब्रह्मा, शिव और शक्ति आदि की भावना से जिसकी प्राप्ति होती है उसको प्राप्त करो। इसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति में सब गुणों के होने पर भी जिस गुण का अन्य दो गुणों से आधिक्य होता है उस गुण से विशिष्ट व्यक्ति प्रधानतया उसी गुण से विशिष्ट देवता की उपासना करता है। जिस पुरुष में रजोगुण और तमोगुण को दबा कर सत्त्व गुण की अधिकता होती है वह सत्त्व-गुण से विशिष्ट विष्णु भगवान् की भावना करता है, और उसकी भावना से विष्णु भगवान् का दर्शन उसे मिलता है। तथा जिसमें रजोगुण की अधिकता होती है वह रजोगुण विशिष्ट श्रीकृष्ण की उपासना करता है। इसी प्रकार तमोगुण प्रधान प्रकृति का पुरुष संहार कारक होने के कारण तमोगुण विशिष्ट शिव अथवा भैरव की उपासना करता है। शिव तथा भैरव की आराधना से उसे शिव और भैरव का

यद्वा भावेन-अनुरागेण 'पूज्यगतत्वादनुरागस्य पूज्येष्वनुरागो भक्तिरिति' लक्षणवशात् भक्त्या नायः नय एव नायः। स्वार्थेऽण्। नायः प्राप्तिर्यस्य तम्। नवविधभक्त्योपेतयोपासनया यस्य प्राप्ति-स्तमेहि। सा च नवविधा एवम्—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् इति ॥

यद्वा भावेन मानसिकाध्यारोपेण नायः प्राप्तिर्यस्य तम्। तथा चोक्तम्—

"भावे हि विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
सर्वशक्तिमयो देवस्तस्माद्भावो हि देवता" ॥

इति भावमात्रोपनीतः पाषाणादिष्वपि साक्षात्स्वरूपोपासनया उपासितुं योग्यो भवति।

यद्वा भव एव भावः संसारः। तत्र नास्ति आयः प्राप्तिर्यस्य तम्। संसारे प्राकृतमनुष्याणां न प्रत्यक्षविषयतामायातीति भावः। नहि प्रकृतिपरायणाः पुरुषा यं साक्षात्कर्तुं शक्नुवन्ति तम् अदृग्गोचरम् एहि, अदृग्गोचरस्यापि मम शरणेन ममाराधनया च साक्षात्कारो भविष्यति। तेन ज्ञानसुखसमृद्धिमोक्षप्राप्तिर्भविष्यतीत्यर्थः।

यद्वा भावनया उपनिषद्विद्याया विचारणेनैव आयः प्राप्तिर्यस्य तम् एहि। उपनिषद्विद्याया विचारणया सर्वतत्त्वेषु तात्त्विकभावनया

साक्षात्कार होता है, और इससे उपासक की अभीष्ट सिद्धि होती है। इसलिए जैसा तेरी प्रकृति में अच्छा मालूम होता है वैसे ही उसे प्राप्त करो। इसका भाव यह है कि अपनी प्रकृति के अनुकूल भावना से तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि होगी।

हृदयान्तःकरणे सच्चिदानन्दसाक्षात्कारो भवति। भावनयैव हृदयाज्ञानपटलानां क्रमशोऽपवर्तनं भवति। ततः स्वयं प्रकाशमान आत्मा स्वात्मन्येव सर्वं पश्यति।

अथवा पूज्य जनों में अनुराग ही भक्ति कहलाता है इस प्रकार नवविध भक्ति से युक्त उपासना के द्वारा जिसकी प्राप्ति होती है उसे प्राप्त करो। वह भक्ति नव प्रकार की होती है जैसे—विष्णुभगवान् के नामों और ललित लीला कथाओं का श्रवण, उच्चस्वर से नाम कीर्तन, मन में नाम स्मरण, पादपूजा, षोडशोपचार से अर्चन करना, वन्दना करना, दासभाव से उपासना करना, मित्र के सम्बन्ध से उपासना और अन्त में अपने को जिस किसी भी रूप में हो भगवान् के चरणारविन्दों में समर्पण कर देना।

अथवा आन्तरिक श्रद्धा से ही जो प्राप्य हो सकता है उसको प्राप्त करो। कहा भी गया है कि—"भाव अर्थात् श्रद्धा में देवता रहते हैं। यदि भाव नहीं है, तो किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए मूर्तिपूजा केवल मिट्टी और पत्थर की ही पूजा होगी। क्योंकि देवता भाव शून्य मिट्टी और पत्थर में नहीं होते। देवता सर्वशक्तिमान होते हैं अतः भाव ही देवता है।" इस प्रकार भावयुक्त अन्तःकरण से पत्थर आदि में भी उसके साक्षात् स्वरूप की ही उपासना होने से वह उपासना करने के योग्य होता है।

अथवा भाव अर्थात् संसार में रहकर जिसकी प्राप्ति नहीं की जा सकती, उसको प्राप्त करो। भाव यह है कि संसार में साधारण मानवमात्र को उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। इस प्रकार प्रकृति के बन्धन से बद्ध पुरुष जिसका साक्षात्कार करने में असमर्थ होते हैं उस अगोचर को प्राप्त करो। क्योंकि दृग्गोचर नहोने पर भी मेरे शरणागत होने से और मेरी आराधना करने से तुम्हें मेरा साक्षात्कार होगा। और इससे तुम्हें ज्ञान, सुख, सम्पत्ति और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

यद्वा भावनया—स्वकृतकर्मणामुपशमश्रेणिमापन्नया भावनया अयः शुभावहो विधिः केवलज्ञानं यस्य तं केवलिनम् सर्वज्ञम् एहि। यद्वा भावनया कर्मश्रेणिक्षपणप्रकारेण अयम् शुभावहविधिम् एहि। तन्नये चायं प्रकारः। शुभाध्यवसायविशिष्टः पुरुषः स्वकृतकर्माणि उपशमश्रेणिमापन्नया भावनया भावयति। यथा—"अहो मयेदम-शुभं कर्म कृतम्, दुष्टोऽहम्, नीचोऽहम्, धिङ् माम्, व्यर्थमेव मयाऽमुकं कर्म कुर्वता लोकः कदर्थित इत्यादि भावनया क्षपकश्रेणि-मापन्नः, पुरुषः सकलं कर्म क्षपयन् केवलज्ञानं प्राप्नोतीति तात्पर्यार्थः।

यद्वा भावेन नायः प्राप्तिर्यस्य तम्। अथवा भावनया आयः प्राप्ति-र्यस्य तम्। भावो नाम भावो भावना उत्पादना क्रिया, क्रिययैव यज्ञादिसिद्धेः। विधिबोधितक्रियाकलाप एव यज्ञादिरिति तदाशयः। तेनैव स्वर्गादिप्राप्तेः। स्वर्गकामो यजेतेत्यादिश्रुतयस्तद्गमकतायां प्रमाणम्।

यद्वा भावे सत्तायां नास्ति आयः प्राप्तिर्यस्मिंस्तम् बौद्धसिद्धान्तम् एहि। बौद्धसिद्धान्ते हि सर्वं क्षणिकम्। न खलु कस्यचिदपि वस्तुनो भावः स्थायित्वं विद्यते। उक्तं हि "सर्वे भावाः क्षणिकाः"।

अथवा भावना अर्थात् उपनिषद्‌विद्या के मनन से ही जिसकी प्राप्ति सम्भव है उसको प्राप्त करो। उपनिषद्विद्या के मनन से सभी तत्त्वों में तात्त्विक भावना हो जाने से हृदय के अन्तस्तल में सच्चिदानन्द भगवान् का साक्षात्कार होता है। भावना के द्वारा क्रमशः हृदय से अज्ञान-समूह का नाश हो जाता है। इसके बाद स्वयं प्रकाशमान आत्मा वाला व्यक्ति अपनी आत्मा में ही सबको देखता है।

पदार्थग्रहणसमकालमेव क्षणिकत्वात्, तस्य तत्त्वेन ग्रहणसमये नाशात्। जायमानस्य पदार्थस्य गृह्यमाणपदार्थस्य च क्षणिकत्वेन नाशात्, भावेन अवस्थानं क्वचिदपि नैवोपलभ्यत इति संक्षिप्ततस्त-

---

अथवा अपने किए कर्मों के विनाश की श्रेणी को प्राप्त भावना के द्वारा ही जिसको केवल ज्ञान होता है उन-सब विषयों से विशिष्ट ईश्वर को प्राप्त करो।

अथवा कर्मों की श्रेणी के विनाश के द्वारा कल्याणकर विधि को प्राप्त करो। इसका तात्पर्य यह है कि शुभ पुरुषार्थ विशिष्ट पुरुष उपशम श्रेणि को प्राप्त भावना के द्वारा अपने किए कर्मों की इस प्रकार मीमांसा करता है कि "अहो ? मैंने यह अशुभ कर्म किया, मैं दुष्ट हूँ, नीच हूँ, मुझे धिक्कार है, व्यर्थ ही मैंने अमुक कर्म करते हुए लोगों को कष्ट दिया है" इत्यादि भावना के द्वारा क्षपक श्रेणी को प्राप्त पुरुष सकल कर्मों को नष्ट करता हुआ केवल ज्ञान प्राप्त करता है।

अथवा भाव के द्वारा या भावना के द्वारा जिसकी प्राप्ति होती है उसको प्राप्त करो। भाव को ही भावना, उत्पादना और क्रिया भी कहते हैं। क्योंकि क्रिया से ही यज्ञादि की सिद्धि होती है। विहित कर्मों का समूह ही यज्ञ कहा जाता है। उसी से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसमें "स्वर्ग कामो यजेत" अर्थात् स्वर्गकी कामना से यज्ञ करे, इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं।

अथवा भाव-अर्थात् सत्ता में जिस सिद्धान्त का विश्वास नहीं है उस बौद्धसिद्धान्त को प्राप्त करो। बौद्धों के सिद्धान्त से सब क्षणिक है। किसी भी वस्तु में स्थिरता नहीं है। उनके सिद्धान्त में कहा गया है कि "सभी वस्तुओं का भाव क्षणिक है।

दाशयः । एवं च सर्वे सिद्धान्ताः समुन्नेयाः । तेषु च बहुतरं विवेचनीयम् । विस्तरभयान्नैवोक्तमिति ।

यद्वा भावनागम्यं मामेहि । प्रायशः सर्वेऽप्यर्थास्तत्र समुन्नेयाः । किं विशिष्टं तमित्याह—भायम् । भाम्-दीप्तिम् अयते गच्छतीति तम् । देदीप्यमानमलौकिकदीप्तिविशिष्टं चित्स्वरूपमित्यर्थः । स्वकीयातिशयवशाल्लोकोत्तरदीप्तियुक्तमिति भावः ।

यद्वा भायाः दीप्तेः आयः प्राप्तिर्यस्मात् तम् , अथवा भाया आयः प्राप्तिस्थानमित्यर्थः, तम् । यत एव सर्वः प्रकाशः प्रादुर्भवति, एवं विशिष्टमीश्वरमेहि इत्यर्थः ।

इसका संक्षेप में आशय यह है कि पदार्थ के ग्रहण काल में ही क्षणिक होने के कारण उसका उस रूप में ग्रहण करने के समय नाश हो जाता है । उत्पन्न हुए और ग्रहण किए जाते हुए पदार्थ के क्षणिक होने के कारण नाश हो जाने से कभी भी भावरूप से उसकी स्थिति नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार सभी सिद्धान्तों को समझना चाहिए । उनमें बहुत कुछ विचार करने की बात है परन्तु विस्तार के भय से नहीं कहा गया है ।

अथवा भावना से प्राप्त होने योग्य मुझे प्राप्त करो । इस पक्ष में भी प्रायः सभी अर्थों को समझना चाहिए ।

पुनः किन विशेषणों से युक्त उस ईश्वर को प्राप्त करो, इस आशय से कहा गया है कि "भायम्" । अर्थात् प्रकाश को प्राप्त होने वाले देदीप्यमान अलौकिक प्रकाश से युक्त चित्स्वरूप उसको प्राप्त करो । इसका भाव यह है कि अपनी विशेषता से लोकोत्तर प्रकाशयुक्त उसको प्राप्त करो ।

यद्वा भयशब्दात्स्वार्थेऽण्। भयमेव भायम्, भायमस्यास्तीति 'अर्श आदिभ्योऽच्' इति अच् प्रत्ययः। तम्। भायम् भययुक्तम्। सकलसंहारकारकत्वात्। यद्वा प्रभातिशययुक्तत्वाद् द्रष्टुमशक्यम्। यद्वा प्रभातिशयवशात्साधारणपुरुषैरगम्यम्। यद्वा विशिष्टतपोवशादपराधिनां भयंकरम् अगम्यं वा तम् एहि। भावनायम् इति विशेषणेऽपि सर्वेऽर्थाः साधीयांस एव।

अथ पुनरपि तमेव बोधयन् तदाराधनाय भक्तमात्मानं वा प्रेरयति। तानितायम् एहि। अयति अयन्ते वा प्राणिनः सकलचराचरजीवलोका यत्रेति आयः संसारः तानित आयः संसारो येन तम्। जालवन्मायाऽनेन विस्तारिता। तथाचोक्तम्—

कण्ठे यस्य विराजते हि गरलं शीर्षे च मन्दाकिनी,
वामाङ्गे गिरिजाननं कटितटे शार्दूलचर्माम्बरम्।
माया यस्य रुणद्धि विश्वमखिलं तस्मै नमः शम्भवे,
जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवत्॥इति॥

अथवा जिससे प्रकाश की प्राप्ति होती है या जो प्रकाश की प्राप्ति का स्थान है उसको प्राप्त करो। अर्थात् जिससे सब प्रकाश उत्पन्न होता है ऐसे प्रकाशमय ईश्वर को प्राप्त करो।

अथवा भय शब्द से स्वार्थ में अण् करके भाय और फिर अच करके भाय शब्द बनावें, तो सबका संहारकारक होने से 'भायम्' अर्थात् भयस्वरूप जो शिव है उसको प्राप्त करो। अथवा अतिशय प्रभा से युक्त होने के कारण जो देखा नहीं जा सकता है। अथवा प्रभा की अधिकता से वह साधारण पुरुषों द्वारा अगम्य है, अथवा

यद्वा सम्यक्प्रकारेण तनितु शीलमस्येति संतानी, सकलचराचर-विस्तारकारकः, तथा तायः स्वयमेव विस्तृतस्वरूपः, एकोऽहं बहु स्याम्' इत्यादि श्रुतेः पुनर्द्वयोः कर्मधारये संतानितायस्तम् एहि। यद्वा संतानितः सम्यग्विस्तारितः अयः शुभावहो विधिर्येन तम्, शुभप्रारब्धवर्धकम्, मार्कण्डेयादीनामायुर्वर्धकत्वात्तथात्वम्। [यद्वा संतानी विस्तारकर्त्ता। तायः पालनकर्त्ता, तम्। विधिविष्णुस्वरुपम्। यद्वा तः तत्त्वस्वरूपश्शिवस्वरुपो वा। तथा अनितायम्; न इतः प्राप्त आयो यस्मिन् सः, संहारकत्वात् प्राप्तेरस्थानम्, हरस्वरूप-मित्यर्थः। ततश्च तश्चासौ अनितायं तानितायम्। [यद्वा न इतः प्राप्तः आयः संसारो यम् तम्। मुक्तिप्राप्त्यनन्तरं संसारेऽनागमात्। यद्वा न इतः प्राप्तः अयः शुभावहो विधिर्यम्। वेदानां निन्दकत्वात्

विशेष तपके द्वारा अपराधियों के लिए भयंकर है अथवा अगम्य है, उसको प्राप्त करो।

इसके बाद फिर भी उसी का बोध कराता हुआ उसकी आराधना के लिए भक्त को अथवा अपने को प्रेरित करता है कि-सम्पूर्ण चराचर जीव जहाँ आते हैं ऐसे संसार को जिसने फैलाया है उसको प्राप्त करो। ईश्वर ने जाल की तरह अपनी माया को फैलाया है। कहा भी गया है—

जिस शङ्कर जी के कण्ठ में जम्बूफल की तरह नीला विष, शिर पर जलके बिन्दुमात्र की तरह गंगा, वाम भाग में कमल के समान पार्वती का मुख तथा कटिभाग में जम्बाल की भाँति व्याघ्राम्बर सुशोभित हैं और जिसकी माया ने सारे विश्व को जाल की तरह जकड़ रखा है ऐसे भगवान शंकर के लिये नमस्कार है।

शुभप्रारब्धोदयरहितम् । बुद्धम्, अर्हन्मतप्रवर्तकं वा । सम्यक् तत्स्वरूपम् अनितायश्च । तस्य विष्णुस्वरूपत्वम् ।

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगमण्डलं,
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो,
ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥इत्यादि ॥

अथवा जो अखिल चराचर विश्व का विस्तार करने वाला है और जो स्वयं विस्तृत स्वरुप वाला है उसको प्राप्त करो।

अथवा अच्छी तरह से फैलाया है कल्याण कर शुभ प्रारब्ध को जिसने उसको प्राप्त करो। क्योंकि उसने मार्कण्डेय आदि की आयु बढ़ायी थी। [अथवा विस्तार करने वाले और पालन करने वाले ब्रह्मा तथा विष्णु स्वरूप उसको प्राप्त करो। अथवा शंकर स्वरूप उसको प्राप्त करो। [अथवा जिसको संसार में नहीं आना होता है उसको प्राप्त करो ; क्योंकि मुक्तिप्राप्ति के अनन्तर संसार में आगमन नहीं होता है।

अथवा जिसको शुभकारी विधि नहीं प्राप्त होती है उसको प्रात करो। क्योंकि बेदों का ·निन्दक होने से वह शुभ प्रारब्ध के उदय से लचित है। इस प्रकार बौद्धमत प्रवर्तक बुद्ध को प्राप्त करो। उसको विष्णु स्वरूप ही समझना चाहिए। यथा—

जिसके मत्स्यावतार धारण करने पर उसकी खाल में सारा समुद्र समा गया और कच्छपावतार में जिसने संसार समूह को अपनी पीठ पर धारण किया और वराहावतार में जिसने दाँत पर पृथ्वी को धारण किया, नृसिंहावतार में जिसने नख पर हिरण्यकशिपु को फाड़ डाला, वामनावतार में पदों से ही जिसने पृथ्वी और आकाश को नाप लिया, परशुरामवतार में जिसके क्रोध में ही क्षत्रियों का समूह विलीन हो गया, रामावतार में जिसके वाण में रावण, कृष्णावतार में हाथ में ही

यद्वा अनितः आयः संसारः संसारवासनादिर्यस्य तम्। केवल-ज्ञानयुक्तत्वात्, मुक्तत्वाद्वेति भावः।

यद्वा अनितः प्राणितः उज्जीवित इत्यर्थः, आयः संसारो येन, सूक्ष्मरूपेण स्थितांस्तानेव परमाण्वादीनादाय यः संसारं प्रवर्तयति तम्, स्वत एव द्व्यणुकादिसम्बन्धेन संसारो जायते तथा स्वभावात् इति प्रकृतिरूपम्। अण् प्राणने, दन्त्यान्त्योऽयमित्येके।

यद्वा अनितः प्राणितः अयः शुभप्रारब्धो येन। पूर्वजन्मोपार्जितशुभकर्माण्यादायैव संसारे जीवमुत्पादयतीति तदर्थः।

यद्वा सन्तानिना पुत्रवता तायः पालनं यस्य यस्मिन् वा सन्तानितायम्। पुत्रवान् पितुः ऋणान्मुक्तो भवतीत्यर्थः।
यद्वा तानितः कर्मकाण्डेन यज्ञादिना च विस्तारितः आयः शुभावहः स्वर्गप्रापकः प्रारब्धो येन तम्। मीमांसकमतप्रवर्तकं जैमिनिम्। कर्मण एव प्राधान्यात्कर्म वा एहि।

कथंभूतमित्याह—यम् वायुः तत्स्वरूपं प्राणरूपमित्यर्थः। उक्तं हि—

'यशो यः कथितः प्राज्ञैर्यो वायुरिति शब्दितः।
याने यातरि यस्त्यागे कथितः शब्दवेदिभिरित्येकाक्षरकोशः।

यद्वा यमिति यशोरूपम्। यशोरूपतया शुभ्रत्वं शोभनत्वमभिलषणीयत्वं तस्येति व्यज्यते।

प्रलम्बासुर और बौद्धावतार में जिसके ध्यान में हो सारा अधार्मिक संसार विलीन हो गया उस किसी के लिए अर्थात् विष्णु भगवान् के लिए नमस्कार है।

एवञ्च यशोरूपं शुभाध्यवसायप्रवर्त्तकम्, चित्स्वरूपं वा। यद्वा जैनबौद्धमतावलम्बिभिः स्तूयमानं यशोविशिष्टमित्यर्थः। एवमेव सर्वसिद्धान्तेष्वपि समुन्नेयम्।

यद्वा 'यम्' इति यानस्वरूपम्। स्वगमनेन सहैव स्वस्थानस्य प्रापकम्। यथा—रामः स्वगत्या सर्वानपि साकेतनिवासिनो मुक्तवान्।

यद्वा यानेन शकटादिवत् सदुपदेशेन स्वगत्या वा समुद्बोधकत्वात्, संसारोत्तारकत्वाद्वा तस्य यानस्वरूपत्वमवगन्तव्यम्। पुनरर्थान्तरेण विशिनष्टि। यम् यातृस्वरूपम्। कारणस्वरूपः कर्तृस्वरूपश्च स इति भावः। यद्वा याता निराकारः सन्नपि यः प्राप्नोति तम् एहि। यद्वा यातारम् गमनस्वरूपम्। मरणानन्तरं स्वर्गे, मोक्षशिलायां, स्वस्वरूपे वा गमनात्तत्स्वरूपत्वमवगन्तव्यम्। सफलगमनविशिष्टमित्यर्थः। पुनरपि प्रकारान्तरेण बोधयति। यम् त्यागस्वरूपम्। त्यागिनमित्यर्थः। स हि संसारमुत्पाद्य तत्र लेपरहितः सन् तं त्यजति। यद्वा रामः पितुराज्ञया राज्यम्, बुद्धः सञ्ज्ञानोदयात्

अथवा शुभकार्य में संलग्न करनेवाला यशस्वरूप एवं चिन्ह स्वरूप है जैन और बौद्धमतावलम्बियों द्वारा प्रशंसित यश से विशिष्ट भी हो सकता है। इसी प्रकार सभी सिद्धांतों में समझना चाहिये। अथवा अपने गमन के साथ अपने स्थान को भी गन्तव्य तक पहुँचाने वाला यान रूप है। जैसा कि श्रीराम ने स्वयं गोलोक की यात्रा के साथ ही, समस्त अयोध्यावासियों को भी मुक्त कर दिया था। अथवा वह शकट की भाँति सदुपदेश या अपनी शुभ गति से, ज्ञानोद्दीपक या संसार का पार कराने वाला होने से यान रूप है। अथवा उसे कारणस्वरूप या कर्त्तृरूप भी कहा जा सकता है। इस प्रकार निराकार होते हुए भी जो पाया जा सकता है उसको प्राप्त करो। अथवा मरने के पश्चात् स्वर्ग में मोक्ष में या अपने स्वरूप में मिलने से वह यातृ अर्थात् गमनस्वरूप भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में वह त्यागरूप भी बतलाया जा सकता है। क्योंकि वह संसार को उत्पन्न कर स्वयं उसमें

पुत्रकलत्रराज्यादिकम्, तीर्थङ्कराः केवलज्ञानोदयात्सर्वं त्यजन्तीति त्यागस्वरूपत्वं तत्तन्नये तत्तदाचार्याणामवगन्तव्यम् ।

यद्वा 'यम्' इति ब्रह्मबीजम् । तेन च ब्रह्मवत् सत्यस्वरूपः ज्ञानवान् अनन्तश्च सोऽस्ति । तमेव हि सर्वेऽपि शैवबौद्धक्रिश्चियनयवनस्मार्तादिमतावलम्बिनः स्वमतप्रवर्तकमाचार्यं स्वसिद्धान्तानुगतमवतारस्वरूपं चैवमेव मन्यन्ते ।

यद्वा व्याप्तम् सर्वज्ञत्वात्सर्वत्रैव विद्यमानमिव, ब्रह्मस्वरूपत्वात्सर्वपदार्थस्वरूपम् । यद्वा मत्तनाशनः—सज्ज्ञानोपदेशात्, कृपातस्तथाभूतज्ञानजनकत्वादभिमाननाशकः उद्धतानामपि दण्डव्यवस्थया औद्धत्यनाशकः । यद्वा वशी जितेन्द्रियः । सर्वमतेष्वपि तत्तदाचार्याणां जितेन्द्रियत्वमवगन्तव्यम् । यद्वा वाग्मी-प्रशस्तवाक्, शुभोपदेष्टा । गीतादयो यदुपदेशाः प्रमाणम् । बौद्धसिद्धान्ते गोमठसारादयः, जैनमते आचाराङ्गकल्पसूत्रादयः, यवनमते कुरानशरीफः, क्रिश्चियनमते बाइबिल प्रभृतयो ग्रन्थाः समुन्नेयाः ।

वासना रहित हो उसे छोड़ देता है राम ने अपने पितृदेव की आज्ञा से राज्य को, सद्ज्ञान होने पर बुद्ध ने स्त्री, पुत्र और राज्य को और जैन तीर्थंङ्करों ने केवल ज्ञानोदय से सब कुछ छोड़ दिया ।

अथवा ब्रह्मबीज होने के कारण वह ब्रह्म की ही भाँति सत्यस्वरूप ज्ञानवान और अनन्त है। उसी को सभी जैन, बौद्ध, क्रिश्चियन, और समस्त मतावलम्बी अपने मत का प्रवर्त्तक, आचार्य अथवा अपने-अपने धर्मसिद्धांतों के अनुसार अवतार भी मानते हैं। अथवा ब्रह्मस्वरूप होने से वह सर्वज्ञ और सर्वत्र विद्यमान होता हुआ समस्त पदार्थमय है। अथवा वह अच्छे अच्छे ज्ञानों से या कृपामात्र से ज्ञान देकर उन्मत्तों के अभिमान को नष्ट करनेवाला और दण्ड-व्यवस्था द्वारा उद्धतों के औद्धत्य को दूर करनेवाला है। अथवा वह वशी अर्थात् जितेन्द्रिय है क्योंकि सभी मतावलम्बी अपने आचार्यों को जितेन्द्रिय मानते हैं। अथवा वह बहुत ही सुन्दर बोलनेवाला वक्ता है। इसके

यद्वा वाग्गीशः वाण्याः प्रभुःयत्सेवनया वाण्यां सरस्वत्यां सामर्थ्यमुपजायते। ग्रन्थनिर्माणे सदुपदेशदाने च समर्थो भवति। यमिति बीजमेतेषां वाचकमतस्तदनुसृत्या व्याख्यातम्। अन्यार्थवाचकमपि विस्तरभयान्न व्याख्यायते। एवमन्यार्थबीजेष्वपि तत्तदर्थतया व्याख्यास्यामः।

पुनस्तमेव विशिनष्टि। कथंभूतमित्याह--'सम्' इति। अमर्त्यकृत् देवत्वप्रापकम्। अत्यन्तसुखाभिलाषुकाणां देवयोनिप्रापकम्। सर्वेषामप्याचार्याणां सदुपदेशात्तत्स्थानप्रापकत्वमवगन्तव्यम्। यद्वा-अमृताक्षः। सर्वमपि वस्तुजातं करामलकवत्प्रत्यक्षमेवावलोकते। सर्वसिद्धान्तेष्वपि सर्वेषामप्याचार्याणां तथा तत्तद्भक्तैः स्वीकारात्।

यद्वा—चन्द्रम्। परमाह्लादकरम्। चदि आह्लादे। चन्द्रयतीति चन्द्रः। ष्ट्रनि प्रत्यये चन्द्रः। सदुपदेशात्परमाह्लादकरः। तम् एहीति सम्बन्धः।

लिए हिंदू-धर्मानुसार गीता, बौद्धसिद्धांत में गोमठसारादि, जैन मत में आचारांग कल्पसूत्रादि, इस्लाम धर्मानुसार कुरान शरीफ और क्रिश्चियन मत में बाइबिल प्रभृति उपदेश वचनों का नाम लिया जा सकता है।

अथवा वह वाणी का स्वामी है जिसकी सेवा से वाणी पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। और ग्रन्थ रचना तथा सदुपदेश देने में मनुष्य कुशल हो सकता है। यम् बीज इतने अर्थों का वाचक है और भी अर्थ होसकते हैं परन्तु बिस्तार के भय से उनकी व्याख्या नहीं की गई है। ऐसे ही दूसरे अर्थबीजों की व्याख्या के अवसर पर पुनः उन की व्याख्या करेंगे।

फिर उसके स्वरूप को बतलाते हुए 'सम्' कहा गया है। अर्थात् वह अत्यन्त सुख की अभिलाषा से उपासना करने वाले व्यक्तियों को देवयोनि तक पहुचाने वाला है। क्योंकि प्रायः सभी वस्तुओं को हाथ

यद्वा समिति जगद्बीजम् । तेन च तदुपासनया तदधिष्ठाने समर्थो भवति । ततोऽसौ जगज्जातं सर्वपदार्थं कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं च समर्थो भवति । न च जगत्तमभिभवितुं शक्नोति । पदार्थमेव अन्यथा कर्तुं शंकराचार्यादिवद् प्रभवति, न तु संसारमुत्पादयितुं समर्थो भवतीति भावः ।

यद्वा समिति, सोऽहमित्यस्य स्वरूपम् । ततश्च तदुपासनेन सोऽहमित्यत्र सामर्थ्यं तस्योपजायते । अयं भावः । तत्त्वमसि १, सोऽहम् २, अहमस्मि ३ इति मुक्तिसाधकत्रिविधज्ञानमध्ये सोऽहम् इत्यत्र सामर्थ्यं तस्योपजायते । एतेषु चायं भेदः । तत्त्वमसि इत्यत्र वक्तुः श्रोतुस्तत्पदवाच्यस्य परमात्मनश्चेति त्रयाणां प्रतीतिः । तत्सिद्धेश्च सामीप्यमुक्तिरुपजायते । 'सोऽहम्' इत्यत्र सः अहमस्मीति द्वयोरेव प्रतीतिः । ततश्च तत्सिद्धेस्तात्रूप्यमुक्तिरुपजायते । एवमहमस्मीत्यत्र सर्वथा भेदनाशात्केवलमात्मन एव प्रतीतिः । ततश्च अभेदतया प्रतीतेस्तादात्म्य- मुक्तिः । एवं च

पर रखे आँवले की भाँति वह प्रत्यक्ष देख सकता है । प्रायः सभी धर्मानुयायी अपने अपने आचार्यों को प्रत्यक्ष द्रष्टा मानते आये हैं ।

अथवा वह चन्द्रमा है । अर्थात् चन्द्रमा को देखते ही जैसे प्राणिमात्र अत्यन्त आल्हादित होता है वैसे ही उसको जो अपने उपदेशों से चित्त को प्रसन्न करने वाला है, प्राप्त करो ।

अथवा जगद्बीज उसको प्राप्त करो । इससे उसकी उपासना से संसार के धारण करने में मनुष्य समर्थ हो जाता है । वह संसार के सभी पदार्थोंको करने, न करने और अन्यथा करने में समर्थ होता है । संसार उसको तिरस्कृत करने में समर्थ नहीं हो सकता ।

अथवा वह सोऽहम् स्वरूप है उसको प्राप्त करो । उसकी उपासना से 'सोऽहम्' की अवस्था प्राप्त करने का सामर्थ्य होजाता है । इसका भाव यह है कि—'तत्त्वमसि' 'सोऽहम्' और 'अहमस्मि' इन तीन प्रकार के मुक्तिसाधक ज्ञानों में से 'सोऽहम्' अर्थात् वह ब्रह्म मैं ही

सोऽहमित्येतत्स्वरूपस्य समिति बीजरूपस्येष्टदेवताराधनेन ताद्रूप्यमसौ मुक्तिमाप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा समिति परमात्मनो बीजम् । तथा च तदुपासनया परमात्मवत्सामर्थ्यमसौ सम्पद्यते । स्वस्य सर्वव्यापकतया जगति पदार्थजातं करामलकवत्पश्यतीति भावः ।

यद्वा समिति त्रिशूलिस्वरूपम् । त्रिष्वपि सत्त्वरजस्तमस्स्वपि शूलिनं शूलधारिणम् । त्रयाणां सत्त्वरजस्तमोविकाराणां निवारकम् । अथवा त्रयाणामपि लोकानां शूलिनम्, त्रिलोकस्यापि संहारकारकम् । अथवा त्रिशूलिनम् ईश्वरम् सदाशिवं, शम्भुस्वरूपमित्यर्थः । तस्येश्वरत्वं च अणिमाद्यष्टविधसिद्धियुक्तत्वात्स्वत एव प्रतीयते । यतः सकलपदार्थानामात्मनश्च अणिमादि कर्त्तुं प्रभवति । ताश्चैताः अणिमा-महिमा चैव लघिमा-गरिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥" १ ॥ यत्सिद्धिप्रभावादणोरप्यणुर्भवति । यथा मशकरूपेण हनुमतोऽहिरावणगृहें

हूँ इस अवस्था को प्राप्त करने में वह समर्थ होजाता है। इन त्रिविध ज्ञानों में यह भेद है कि—'तत्त्वमसि' ऐसा ज्ञान होने पर वक्ता श्रोता और उस पद से वाच्य परमात्मा इन तीनों की प्रतीति होती है। इसी की सिद्धि होने से सामीप्य मुक्ति होती है। सोऽहम् अर्थात् वह ब्रह्मपद वाच्य मैं हूँ ऐसा ज्ञान होने पर दो की ही प्रतीति होती है अतः इसकी सिद्धि से ताद्रूप्य मुक्ति होती हैं। इसी प्रकार अहमस्मि अर्थात् मैं हूँ ऐसा ज्ञान हो जाने पर ज्ञानी और उस ब्रह्म में कोई भी भेद न रह जाने से केवल आत्मस्वरूप की ही प्रतीति होने से तादात्म्य मुक्ति होती है। इस प्रकार सोऽहम् इस स्वरूपवाले सम् इस बीज रूप इष्ट देवता की आराधना से वह ताद्रूप्य मुक्ति को प्राप्त करताहै।

अथवा परमात्मा स्वरूप सम् बीज को प्राप्त करो। इस प्रकार उस की उपासना से वह परमात्मा को तरह सामर्थ्य प्राप्त करता है।

प्रवेशः। एवं द्वितीयाया अपि सिद्धेः सिद्धं तत्रैव महतो महद्रूपं विहितम्। एवमन्यासामपि सिद्धीनां सिद्धौ तथा तथा सामर्थ्यमुपजायते, विस्तरभयात्प्रकृते अनुपयोगाच्च न प्रदर्श्यते। मम च परमात्म-स्वरूपत्वान्मदुपासनयाऽपि सर्वमपीदं प्राप्तुं शक्यते इति यथाऽभिरुचि तमेहीति तदाशयः।

पुनः किं विशिष्टमित्याह-भावमयम्, भावप्रधानम्। भाव एव प्रधानतया कारणं यदुपलब्धावस्ति। समुत्कटभावेऽवश्यमेव तत्प्राप्तिर्भवतीत्यर्थः।

यद्वा भावमयम्-भावस्य विकाररूपम्। भावे एव ईश्वरः स्वयमेव तद्रूपतया परिणमति, यदाकारेणासौ उपास्यते, तदाकारेणैव स्वयमेव परिणमतीत्यर्थः, देवीशिवहनुमदादिस्वरूपेणोपासितस्तत्तत्स्वरूपेण प्रकटीभवति। तथा चोक्तमनेकविधस्वरूपत्वं तस्य। यथा– 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कु

इस का भाव यह है कि आत्मा के सर्वव्यापक होने से संसार के पदार्थ मात्र को वह हाथ पर रखे आमलक की तरह स्पष्ट रूप से देखता है।

अथवा त्रिशूली अर्थात् शंकर स्वरूप उसको प्राप्त करो। अर्थात् सत्व, रज, तम, तीनों ही गुणों में शूल को धारण करने वाले अथवा सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों के विकारों को निवारण करने वाले अथवा तीनों लोकों के संहार करने वाले शूलधारी अथवा त्रिशूली अर्थात् सदाशिव शम्भु स्वरूप ईश्वर को प्राप्त करो। उसका होना अर्थात् सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न होना अणिमा आदि आठ सिद्धियों से युक्त होने के कारण अपने आप ही प्रतीत होता है। क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थों को और आत्मा को भी अणु आदि रूप में करने में सिद्धियाँ समर्थ होती हैं। वे निम्न लिखित हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व कुल आठ सिद्धियाँ होती

मारो उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।"

यद्वा भाम् दीप्तिं चाति गच्छतीति भावः तम् । दीप्तौ चित्स्वरूपे एव सर्वेषां योगिनां गमनात् । यद्वा भां दीप्तिं वमति उद्गिरतीति भावमः । तपःप्रभातिशयाच्छरीरतो भाया उद्गिरणमिवोपगम्यते । अर्हन्मते यथा तेजोलेश्यायाः प्रादुर्भावः । अथवा अर्हन्मतप्रवर्तक–महावीरसमुत्पत्तिकाले प्रभायाः प्रकाशनम् । स चासौ यश्चेति भावमयस्तम् । यद्वा भायाः चित्स्वरूपब्रह्मणः सकाशात् अवमं याति गच्छतीति भावमयस्तम् । ब्रह्मणः स्थानात्स्वर्गस्थानम् अवमम् । तत्र गन्तारो भावमयाः देवाराधकाः स्वर्गमात्रगन्तारः कर्मठा वा । उक्तं हि गीतायाम्—देवान् देवयजो यान्ति पितॄन् यान्ति पितृव्रताः । भूतान् व्रजन्ति भूतेज्या मद्भक्ता यान्ति मामपि' इत्यादि ।

हैं ॥ १ ॥ अणिमा सिद्धि के प्रभाव से कोई भी वस्तु अणु से भी अणु रूप में हो सकती हैं जैसे हनुमान जी मशकरूप से अहिरावण के घर में घुसे थे। इसी प्रकार दूसरी महिमा सिद्धि के सिद्ध हो जाने से कोई भी वस्तु बड़े से बड़े रूप में हो सकती है जैसे समुद्र को पार करने के समय सुरसा के सामने हनुमान जी ने बड़ा से बड़ा स्वरूप धारण किया था। इसी प्रकार अन्यान्य सिद्धियों के द्वारा उनकी सामर्थ्य के अनुसार नाना विध सामर्थ्य प्राप्त होता है। परन्तु यहाँ विस्तार भय से और प्रकृत में अनुपयोगी होने के कारण नहीं दिखाया जाता है। और मेरा परमात्मादि स्वरूप होने के कारण मेरी उपासना से भी यह सब पाया जा सकता है। इस प्रकार अपनी रुचि के अनुसार मुझे प्राप्त करो।

फिर वह ईश्वर कैसा है इस आशय से कहा गया है कि–भाव मय अर्थात् भाव प्रधान उसको प्राप्त करो। क्योंकि उसकी प्राप्ति में भाव ही प्रधान कारण है। अर्थात् उसमें अति उत्कृष्ट भाव होने पर उसकी

पुनः किं विशिष्टमित्याह—भवभयहरणम् । भवभयस्य हरणस्तत् भवभय-हरणम् । उपास्यमानेनानेन भवभयो ह्रियते इति तदुपासकस्त्वं निर्मुक्तो भविष्यतीत्यर्थः ।

यद्वा भवः शिवः तस्य भयम्, संहारसंभवं मृत्युभयं तस्य हरणम्, मृत्युभयनाशकम् मोक्षोपलब्धेस्तत्कृपातो जन्ममृत्युविनिर्मुक्तो भवतीति भाव ।

यद्वा भवस्य जन्मनो यद् भयं तस्य हरणम् । "अपाम सोमममृता अभूम" इति अमृतत्वप्रापकत्वात्पुनर्जन्मनो निवारकम् । हरतीति हरणः । "चलनशब्दार्थाद् अकर्मकाद् युच्" इति युच । अथवा नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः, इति ल्युप्रत्ययः ।

अवश्य ही प्राप्ति होती है। अथवा-भाव के विकार रूप उसको प्राप्त करो। भाव में ही ईश्वर स्वयं तद्रूप होकर उसमें परिणत हो जाता है। अर्थात् जिस आकार से उसकी उपासना की जाती है वह उसी आकार में स्वयं परिणत हो जाता है। देवी, शिव और हनुमान आदि स्वरूप से उपासना किये जाने पर वह उसी उसी रूप में प्रगट होता है। इस प्रकार उसका अनेक प्रकार का स्वरूप कहा भी गया है। तू स्त्री हो तू पुरुष हो, तू कुमार हो, तू कुमारी हो और जीर्ण वृद्ध भी तू ही हो। इस प्रकार तू सर्वतोमुखी हो"

अथवा जो प्रकाश को प्राप्त करता है उसको प्राप्त करो। क्योंकि चित्स्वरूप प्रकाश में ही सभी योगी पहुँचते हैं। अथवा उसके अति-प्रभावशाली होने से उसके शरीर से प्रकाश का बाहर की ओर निक-लना जान पड़ता है अतः जिससे प्रकाश बाहर निकलता है ऐसे उस ईश्वर को प्राप्त करो।

अथवा जैन मत प्रवर्तक महावीर स्वामी के उत्पत्ति समय के प्रकाश स्वरूप उसको प्राप्त करो। अथवा जो चित्स्वरूप ब्रह्म के समीप से स्वर्ग स्थान को जाता है उसको प्राप्त करो। वहाँ जाने वाले भावमय

यद्वा एवेत्यस्य भिन्नक्रमेण सम्बन्धः। ततश्चायमर्थः। अहमेव यस्मिन्नस्मि। अयं भावः। यद्यपि जीवादीनामपि तस्मिन्नवस्थानमस्ति तथापि इहेदानीमवस्थानदशायां ममैवावस्थानमस्ति। ममैवेदानीं यत्र स्थितिः, न युष्माकमपीति तत्तात्पर्यार्थः।

यद्वा हम् इति अहंकारयुक्तो जीवः। न हम् अहम्। अहंकाररहित एव जीवो यस्मिन्नस्तीति तदर्थः।

कीदृशोऽहमिति स्वस्वरूपं प्रदर्शयति। ओमिति। ओंकाररूपोऽहम्। ब्रह्माविष्णुशिवानामोङ्कारस्वरूपत्वात्। त्रिदेवस्वरूपोऽहमित्यर्थः।

यद्वा ओमिति सर्वनिगमागमजनकः। तत एव सर्वेषां वर्णानां निगमागमानां चोत्पत्तेरिति सकलशास्त्रस्वरूपोऽहमित्यर्थः।

अर्थात् देवताओं की आराधना करने वाले, स्वर्ग मात्र में गमन करने वाले की उपासना करने वाले पितरों को, भूतों के उपासक भूतों को तथा मेरे भक्त मुझे भी प्राप्त करते हैं। इत्यादि।

फिर वह ईश्वर कैसा है? इस अभिप्राय से कहा गया है कि वह भव के भय को दूर करने वाला है। इसकी उपासना करने से संसार का भय नहीं रह जाता है अतः उसके उपासक तू मुक्त हो जाओगे। अथवा भव अर्थात् शिव के संहार से उत्पन्न होने वाले मृत्युभय को नाश करने वाले उसको प्राप्त करो। भाव यह है कि उसकी कृपा से मोक्ष की प्राप्ति होने से जन्म और मृत्यु का भय नहीं रह जाता है। अथवा जन्म के भय को दूर करने वाले उसको प्राप्त करो।

अथवा एव इसका भिन्न क्रम से सम्बन्ध करें तो यह अर्थ होगा कि मैं ही जिसमें हूँ। इसका भाव यह है कि जीवादि की भी उसमें स्थिति है फिर भी इस समय मेरी ही उसमें स्थिति है। इसका तात्पर्य यह है कि मेरी स्थिति है वहाँ तुम्हारी नहीं है। अथवा अहंकार रहित ही जीव जिसमें रहता है उसको प्राप्त करो। मैं कैसा हूँ?

यद्वा ओमिति नारायणबीजम्। ततश्च नारायणस्वरूपोऽहमित्यर्थः। मदुपासनया च ब्रह्मस्वरूपतामधिगमिष्यसीति तात्पर्यार्थः। अयमाशयः। दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्' एवं च संन्यासाग्रहणेऽपि मदुपासनया सन्नयासाश्रममुपलप्स्यसे ततश्च स्त्रीशूद्राणामपि सन्न्यासफललाभो ममोपासनया भविष्यति। मोक्षश्च तेषामप्यस्मिन्नेव जन्मनि भविष्यतीति भावः।

यद्वा ओमित्यनन्तबीजम्। तत्स्वरूपश्चाहम्। एवं च मदुपासनया तदुपासना स्वत एव भविष्यति। एवं च मदुपासनया अनन्तशक्तिमांस्त्वं सम्पत्स्यते।

इस प्रकार अपने स्वरूप को दिखाने के अभिप्राय से कहा गया है कि "ओम्" अर्थात् मैं ओंकार रूप हूँ। क्यों कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव ओंकार रूप होते हैं। भाव यह है कि मैं त्रिदेवस्वरूप हूं।

अथवा ओम् यह सब निगम और आगम का जनक है। उसी से सभी वर्णों और निगम तथा आगमों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मैं सम्पूर्ण शास्त्र स्वरूप हूं। अथवा ओम् नारायण बीज है अतः मैं नारायण स्वरूप हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि मेरी उपासना करने से ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त करोगे। इसका आशय यह है कि 'मनुष्य दण्ड-ग्रहण करने मात्र से ही नारायण हो जाता है" इस प्रकार संन्यास ग्रहण न करने पर भी मेरी उपासना करने से सन्यास आश्रम को प्राप्त करोगे फिर स्त्री और शूद्रों को भी मेरी उपासना से संन्यास का फल मिलेगा। भाव यह है कि उनका भी इसी जन्म में मोक्ष हो जाएगा।

अथवा ओम् अनन्त बीज है। और तत्स्वरूप मैं हूँ। इस प्रकार मेरी उपासना से उसकी उपासना स्वतः होजायगी। और फिर मेरी उपासना से तू अनन्त-शक्तिमान् होजायेगा।

यद्वा अहम् अनन्तस्वरूपोऽस्मि। ततश्चाहमनन्तशक्तिमानस्मि। न मे शक्तेः स्वरूपस्य वा पारं पारयितुं कोऽपि प्रभवति। उक्तं हि 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इत्यादि। यद्वा ओमित्यनन्तबीजोऽहम्, ततश्च ब्रह्मणोऽनन्तत्वात् अहं ब्रह्मस्वरूप इति कृत्वा अहं ब्रह्मस्वरूपोऽस्मीत्यर्थः। भागप ओम् इह ओमाङोश्चेत्यनेन पररूपमिति भागपोम् सेत्स्यति।

पुनः किंविशिष्टोऽहमित्याह। हम् इति। हम् इति परमात्मनो बीजम्, तत्स्वरूपोऽहमित्यर्थः। ततश्च मदुपासनयाऽपि परमात्मवत् सर्वकार्येषु ते सामर्थ्यं समुत्पत्स्यते। अत्र यद्वक्तव्यं तत्सर्वं समिति विशेषणव्याख्यायामुक्तम्। हंसबीजेऽपि पूर्ववदवगन्तव्यम्।

यद्वा हमिति शिवबीजम्। ततश्च तदुपासनया शिववत्सामर्थ्यवान्भवति। एवं च शेते जगद् यस्मिन्निति शिवः। तत्स्वरूपतया मां सर्वसंसारिजनक्षेमाशुभकरणसामर्थ्यवन्तं जानीहीति भावः।

अथवा मैं अनन्तस्वरूप वाला हूँ। इससे यह सिद्ध हुआ कि मैं अनन्त शक्तिमान् हूँ। मेरी शक्ति और स्वरूप का कोई भी पार नहीं पा सकता है। कहा भी गया है कि— "जहाँ मन सहित वाणी उसके स्वरूप को न पाकर लौट आती है" इत्यादि। अथवा ओम् ऐसा अनन्त बीज वाला मैं हूँ। इससे ब्रह्म के अनन्त होने से मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ। फिर मैं कैसा हूँ? इस अभिप्राय से कहा गया है कि "हम्"। हम् यह परमात्मा का बीज है। अर्थात् मैं तत्स्वरूप हूं। इसलिए परमात्मा की तरह से मेरी उपासना से भी सभी कार्यों में तुम्हारा सामर्थ्य हो जाएगा। यहाँ जो कुछ कहना है सब "सम्" इसकी व्याख्या में कहा जा चुका है। वैसे ही हंस बीज पर भी समझना चाहिए।

अथवा हम् यह शिव बीज है। इसलिए इसकी उपासना से उपासक शिव की तरह सामर्थ्यशाली होता है। जिसमें संसार सोता

यद्वा शिव इति कल्याणस्वरूपोऽहम् । एवं च शिवसादृश्येन आशुतोषकत्वमभिव्यज्यते । उक्तं हि "तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि" इत्यादि शिव-स्वरूपत्वे तद्गुणा अवगन्तव्याः ।

यद्वा हमिति कोप । तद्वति लक्षणा । अर्श आदित्वात् अच् वा । ब्रह्मणो विशेषणत्वात् नपुंसकता । ततो नृसिंहस्वरूपत्वात्कोपयुक्तः । एवञ्च कोपबहुलं नृसिंहमेहीति तदाशयः । अथवा हमिति मम विशेषणम् । ततश्च कोपे प्रभविष्णुं स्वयं क्रोधादिरहितमित्यर्थः । एवं तस्य ममैवोपासनया कोपे समर्थो भविष्यति, न तस्य कोपः किञ्चिदप्यनिष्टं न वा तमाक्रन्दयितुं प्रभवतीति भावः ।

पुनः किं विशिष्टोऽहमित्याह-वां बीजरूपोऽहम् । वामिति वरुणस्य बीजम् । ततश्च वरुणस्य बीजमुत्पत्तिस्थानम् । मत्सकाशादेव वरुणः प्रादुर्भवति । अथवा वरुणस्य जलाधिपतित्वादहमेव तदुत्पत्तिस्थानम्

है उसे शिव कहते हैं । तत्स्वरूप होने से अपने को सांसारिक जनों के कल्याण और अशुभ करने में समर्थ समझो ।

अथवा शिव अर्थात् मैं कल्याणस्वरूप हूँ । इस प्रकार शिव के सादृश्य से मेरा आशुतोष होना अभिव्यक्त होता है । कहा भी गया है कि "स्मरण करने वालों को वर देने वाले अति कल्याण स्वरूप हो ।" इत्यादि । शिव स्वरूप होने पर उसके गुण भी हों जायेंगे ।

अथवा हम् का अर्थं कोप है । इसप्रकार कोपविशिष्ट में लक्षणा होगी । नपुंसक लिङ्ग ब्रह्म का विशेषण होने से है । इसका आशय यह है कि कोप से युक्त नृसिंह को प्राप्त करो । अथवा हम् यह विशेषण है । इस प्रकार कोप पर समर्थ स्वयं क्रोधादि से रहित उसको प्राप्त करो । उसकी अथवा मेरी उपासना से कोप पर समर्थ होजाओगे । कोप उसका न तो कुछ अनिष्ट कर सकता है और न तो उसको अपने वशीभूत कर सकता है ।

अहं तत्प्रादुर्भावकः। न खलु तत्र मत्सत्वे अतिवृष्टिरनावृष्टिर्वा सम्भवतः। मद्भक्तोऽपि तन्निग्रहावग्रहे समर्थो भवति। अथवा वरुणबीजरूपत्वे स्वस्य शान्तस्वभावत्वं व्यज्यते। इति।

यद्वा वामिति विष्णुबीजम्। ततश्च विष्णुबीजत्वेन जगति व्यापकत्वं स्वस्य सूचितं भवति। अथवा मम विष्णुबीजत्वेन ममोपासनया विष्णुवद् व्यापकत्वं परकायप्रवेशादिशक्तिमत्वं च ते सम्पत्स्यते। अथवा ममोपासनया जगति विद्यमानानां पदार्थानां स्वस्वरूपधारणे शक्तिमान् भविष्यति। यथा रामोपासनया शक्तिलाभात् हनुमता मशकरूपधारणं कृतमिति अहिरावणवधे तुलसीकृतरामायणे प्रसिद्धम्। अथवा वामिति विष्णुबीजोहमिति विष्णोरप्यहमेवोत्पादक इति ब्रह्मरूपत्वं स्वस्य सूचितं भवति। विधिहरिहरादीनामुत्पादकं ब्रह्मैव।

फिर मैं कैसा हूं? इस आशय से कहा गया है कि मैं वाम् बीजरूप हूँ। 'वाम्' वरुण का बीज होता है। इससे वरुण की उत्पत्ति होती है। अतःमुझ से ही वरुणकी उत्पत्ति होती है। अथवा वरुण के जल के स्वामी होने से मैं ही उसका उत्पत्ति स्थान हूँ। अर्थात् मैं उसका उत्पादक हूँ। वहाँ पर मेरी स्थिति होने से अतिवृष्टि और अनावृष्टि की सम्भावना नहीं होती है। मेरा भक्त भी उसके करने न करने में समर्थ होता है। अथवा वरुण बीज रूप होने से मेरा शान्त स्वभाव व्यक्त होता है।

अथवा "वां" विष्णु बीज है। इस प्रकार विष्णु बीज होने से संसार में मेरा व्यापक होना सूचित होता है। अथवा मेरे विष्णु बीज रूप होने से मेरी उपासना से विष्णु की ही तरह व्यापक होना अर्थात् दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाने की शक्ति तुझे हो जाएगी। अथवा मेरी उपासना से संसार के सभी पदार्थों को अपने स्वरूप में धारण करने में समर्थ होजाओगे। जैसे तुलसीकृत रामायण में अहिरावणवध के प्रसंग में राम की उपासना से शक्ति लाभ करके

अथवा विष्णुबीजोऽहमिति। वेवेष्टि सर्वत्र व्याप्नोतीति विष्णुः। विष्णुबीजत्वात् सर्वत्राप्यहमेव विद्यमानोऽस्मीति कस्यचिदप्युपासनया ममोपासना भविष्यति, ममोपासनया वा तवाभिमतस्योपासना भविष्यतीति तदर्थः।

पुनः किं विशिष्टोऽहमित्याह। क्रीं रूपोऽहम्। क्रीमिति कालिकाबीजम्। ततश्च कालिकावत्सर्वसामर्थ्यवानहमस्मीत्यर्थः। व्याख्यातमिदं पूर्वं यमिति विशेषणव्याख्याने। अथवा क्रीमिति शक्तिबीजम्। ततश्च शक्तिमानहमस्मीत्यर्थः। अथवा ममोपासनया च शक्तिमान् भवति। अथवा शक्तिबीजत्वात् मत्त एव शक्तेरपि प्रादुर्भावो भवति, अथवा ममोपासनया शक्तेरप्युपासना स्वत एव फलिता भवतीत्यर्थः।

पुनः किं विशिष्टोऽहमित्याह। आँ रूपोऽहम्। अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिक इत्यनुनासिकः। आकाररूपोऽहम्। एतेन पितामहरूपोऽहमित्यर्थः। एवं च जनकस्याप्यहमेव जनकः। तत इदं फलितं भवति।

हनुमान् का मशक रूप धारण करने का वर्णन है। अथवा वाम् बिष्णु बीज है अतः विष्णु का भी मैं ही उत्पादक हूँ इस प्रकार मेरा ब्रह्म स्वरूप सूचित होता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी उत्पादक ब्रह्म ही है। अथवा विष्णु बीज स्वरूप मैं हूँ। जो सर्वत्र व्यापक होता है उसको विष्णु कहते हैं। विष्णु बीज रूप होने से सर्वत्र मैं ही विद्यमान हूँ। इस प्रकार किसी की भी उपासना से मेरी उपासना होगी। अथवा मेरी उपासना से तुम्हारे इष्टदेव की उपासना होगी।

फिर मेरा कैसा स्वरूप है? इस आशय से कहा गया है कि मैं क्रीं रूप हूँ। क्रीं कालिका बीज है। अतः कालिका की तरह मैं सर्व सामर्थ्यवान् हूँ। इसकी व्याख्या "यम्" विशेषण इसकी व्याख्या के अवसर पर की जा चुकी है। अथवा क्रीम् शक्तिबीज है अर्थात् मै

वृक्षादीनामुत्पादकस्य बीजस्याप्यहमेवोत्पादकः। अथवा पितामहबीजत्वात्पितामहस्वरूपोऽहमित्यर्थः। परमेष्ठी पितामह इत्यमरः। एवं च ब्रह्मरूपत्वान्मे चतुर्णामपि वेदानामहमेव तत्त्वज्ञाताऽस्मीत्यर्थः। अथवा आँ इति पूजायाम्। ततश्च पूजारूपोऽहमित्यर्थः। एतेन पूजाक्रियास्वरूपत्वं स्वस्य फलितं भवति तेन सकलदेवपूजायामहमेव तेषामाराध्यदेवोपासनायाः समुपस्थापक इति भावः। अथवा आ इति माङ्गल्ये। उक्तंहि—अकारो वासुदेवः स्यादाकारस्तु पितामहः। पूजायामपि माङ्गल्ये आकार परिकीर्तितः इत्येकाक्षरकोशे।

ततश्च माङ्गल्यरूपोऽहमस्मीत्यर्थः। एवं च मम माङ्गल्यस्वरूपत्वान्ममोपासनया सर्वाण्यपि मङ्गलानि साधियतानि भवन्ति। अथवा मम माङ्गल्यरूपत्वान्ममागमनेन सर्वेषामपि मङ्गलानां स्वत एव आगमो

शक्ति-मान हूं। अथवा मेरी उपासना से उपासक शक्तिमान् होता है। अथवा शक्तिबीज होने से मुझ से ही शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अथवा मेरी उपासना से शक्ति की भी उपासना स्वतः ही हो जाती है।

फिर मेरा स्वरूप कैसा है? इस आशय से कहा गया है कि "मैं आ रूप हूँ" इस प्रकार रूप होकर मैं पितामह स्वरूप हूँ। और जनक का भी मैं ही जनक हूँ। इसका आशय यह है कि वृक्षादि के उत्पादक बीज का भी मैं ही उत्पादक हूं। अथवा पितामह बीज होने के कारण मैं पितामह स्वरूप हूँ। इस प्रकार मेरा ब्रह्म रूप होने से चारो भी वेदों का मैं ही तत्वज्ञाता हूं। अथवा आ का पूजा अर्थ लेने पर मैं पूजारूप हूँ। इससे अपना पूजाक्रिया स्वरूप फलित होता है। अतः सभी देवताओं की पूजा में मैं ही उनके आराध्य देव की उपासना का समुपस्थापक हूँ। अथवा आ का अर्थ मंगल है। कहा भी गया है कि—एकाक्षर कोष में – अकार का अर्थ वासुदेव और आकार का पितामह, मंगल और पूजा अर्थ होता है।

भवतीत्यर्थः। अत्र आकारादिबीजानां तन्त्रगतत्वेन ऋषिदृष्टत्वात् छान्दसत्वम्। 'ततश्छन्दसि दृष्टानुविधिः, अथवा निपातत्वाद् अव्ययत्येन विभक्तिलोप इति।

'हे' इति। हे इति सम्बोधने आमन्त्रणे वा। भव्या इति। अथवा हे इति सप्तम्यन्तम्। हकारः कोपार्थकः। ततश्च हे कोपे सति। प्रत्यासत्या मम कोपे सति अहं भागपः। भागं पिवतीति भागपः। अंशानामपि नाशकोऽस्मीर्थं। यद्यपि, कामक्रोधादिविकारशून्यस्य निर्द्वन्द्वस्य निरहंकारस्य च क्रोधस्तथापि स्वसामर्थ्यस्वरूपप्रदर्शनाय तथोक्तं न विरुध्यत इति ॥१॥

अथ जीवं पुनरपि स्वाभिमतदेवे समुन्मुखीकुर्वन्नुपदिशति—

भां हां हिं हौं हीं वं लं यं सं त तादृरो भाग! सं वं लं हे।
देव! भक्तमयं मम हे सत्त्वं हि हं यं वं वायं कम् ॥२॥

हे भाग! हे अंशभूतजीव! जीवस्यईश्वरांशत्वात् तदंशभूतत्वं प्रसिद्धम्। यद्वा जीवब्रह्मणोरभेदत्वेऽपि अग्नेः स्फुलिङ्गाः, राहोःशिरः इतिवद्भेदोऽवगन्तव्यः। वस्तुतस्तु प्रतीयमानभेदेऽपि सुवर्णस्य कुण्डलमिति वत्कुण्डलस्य सुवर्णादभिन्नत्वमेवावगन्तव्यम्।

अर्थात् मैं मांगल्य रूप हूं ऐसे मेरे मंगल स्वरूप होने से मेरी उपासना से सभी मंगल सिद्ध होते हैं। अथवा मेरा मंगलमयरूप होने से मेरे आगमन से सभी मंगलों का आगम अपने आप ही होता है। यहाँ पर आकारादि बीजों का तन्त्र में वर्णन न होने से ये छान्दस हैं अतः विभक्ति का लोप हो गया है।

"हे" यह सम्बोधन और आमन्त्रण अर्थ में है। अथवा "हे" सप्तम्यन्त रूप है और हकार का अर्थ कोप होता है। इसप्रकार इस प्रकार' कोप होने पर " ऐसा अर्थ हुआ। भाव यह है कि मेरा कोप होने से मैं 'भागप' अर्थात अंशो का नाश करने वाली हूँ। यद्यपि

उक्तं हि 'सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ।' इत्यादि । विशेषतोऽत्र वक्तव्यमस्मत्कृतशङ्करविजयनाटकादवगन्तव्यमित्यलमत्र बहूक्तेन ।

यद्वा भां दीप्तिं सर्वदा प्रकाशमानत्वाद् दीप्तिस्वरूपं केवलज्ञानम्, अगति गच्छतीति भाग । क्षपकश्रेणिमापादयन् केवलज्ञानमापन्नो जीव इत्यर्थः । आर्हतदर्शने चेत्थमेव प्रतिपादनाज्जीवस्य तथात्वमवगन्तव्यम् । तत्सम्बुद्धौ हे भाग ! प्रकरणवशात् हे जीव ! अथवा अर्श आदित्वादचि हे भाग ! हे जीविन्, भविकजीविन्निति शुभकर्मकारित्वादवगन्तव्यम् ।

यद्वा भां देदीप्यमानत्वाद्दीप्तं दीप्तिस्वरूपं वा ईश्वरं गाते प्राप्नोतीति भागः । गाङ् गताविति धातोः । 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्यये भागः ।

काम क्रोधादि विकारों से शून्य, निर्द्वन्द्व और निरहंकार को क्रोध नहीं होता है फिर भी अपने सामर्थ्य और रूप को दिखाने के अभिप्राय से ऐसी उक्ति भी असंगत नहीं हो सकती है ॥ १ ॥

तत्पश्चात् जीव को फिर भी अपने अभीष्ट देवता के प्रति आकृष्ट करते हुये उपदेश करती हैं कि—अंशभूत जीव ! जीव के ईश्वर का अंशभूत होने से उसका अंशरूप में होना प्रसिद्ध है। अथवा जीव और ब्रह्म का अभेद होने पर भी 'अग्नेः स्फुलिंगाः और राहोः शिरः' की तरह भेद होता है। वस्तुतः भेद की प्रतीति होने पर भी' सोने का कुण्डल' की तरह जैसे कुण्डल की सुवर्ण से अभिन्नता होती है वैसे ही समझना चाहिए।

कहा भी गया है कि—हे नाथ ! आप में और मुझमें भेद न होने पर भी अर्थात् सर्वथा एक होने पर भी मैं तुम्हारा हूँ तू मेरे नहीं हो। जैसे समुद्र और तरंग में कोई भेद न होने पर भी तरंग समुद्र का होता है परन्तु तरंग का समुद्र नहीं होता। भाव यह है कि अंशी से

यद्वा भाम् उक्तरीत्या ईश्वरं गायति भक्त्युद्रेकेण तद्गुणं तत्कर्म चेति भागः, तत्संबुद्धौ हे भागः ; द्वैतविशिष्टद्वैतवादिन् भक्त्या परमेश्वराराधकः ।

यद्वा भम् नक्षत्रम्, विशिष्टपुण्योदयवशाद् ध्रुवादिवन्नक्षत्रस्वरूपम् आसमन्ताद् गाते प्राप्नोतीति भागः, अथवा भम् अगतीति भागः ।

यद्वा नक्षत्रलोकानां स्वर्गस्वरूपत्वात् तदवस्थायित्वाद्वा तात्स्थ्यात्स्वर्गे उपचारः, ततश्च भं स्वर्गम् आगति, आसमन्ताद्गाते प्राप्नोतीति भागः । मीमांसकनये जीवो यज्ञादिना स्वर्गमाप्नोति ।

स्वर्गकामो यजेत, इत्यादिश्रुतयोऽत्रवीनम् । ततश्चायमर्थः,हे भाग ! हेयज्ञादिकर्मणा स्वर्गगामिन् ! जीव ! एवं सर्वसिद्धांतेषु भावनीयम् ।

अथ पुनरपि जीवं भक्तं वा, उन्मुखी करोति । द्विवद्धं सुवद्धं भवतीति नयात् स्वोन्मुखी करणाय द्विवारमुक्तं नानुचितमित्यवगन्तव्यम् ।

ही अंश होता है परन्तु अंश से अंशी नहीं होता । इत्यादि । यहाँ इस विषय पर अधिक नहीं कहा जा सकता, जिसे विशेष रूप से जानने की इच्छा हो, वह मेरे शंकर विजय नाटक में देख सकता है । यहाँ इतना कथन ही पर्याप्त है ।

अथवा— भा दीप्ति को कहते हैं, सदा प्रकाशमान होने से दीप्ति स्वरूप केवल ज्ञान है । भादीप्ति को अगति जो प्राप्त होता है उसको भाग कहते हैं । क्षपक श्रेणि को प्राप्त करता हुआ केवल ज्ञान को प्राप्त हुआ जीव । आर्हत दर्शन में इस प्रकार लिखने से जीव को ऐसा ही जानना चाहिये । सम्बोधन में हे भाग ! प्रकरणवश से हे जीव ! अर्शादि अच् होने पर हे भाग ! हे जीविन् ! भविक जीविन् यह शुभ-कर्म करने के कारण जनना चाहिये । यद्वा भां माने देदीप्यमान होनेसे दीप्ति कों, दीप्तिस्वरूप को वा ईश्वर को प्राप्त होता है वह भाग है । गाङ गतो धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्र से क प्रत्यय होने से भाग सिद्ध होता है ।

हे देव ! दीव्यतीति देवः। दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु, इतिदिव्धातोः पचादित्वादचि गुणे च देव ! तत्संबुद्धौ हे देव ! हे क्रीडाभिलाषिन् ! संसारक्रीडानुरक्तइत्यर्थः।

यद्वा हे देव ! हे विजगीषो ! शुभकर्माध्यवसायतया कर्मक्षयकारत्वेन संसारविजयकारिन् जीव ! अथवा मातापितृकलत्रादिसम्बन्धसुखैकप्रवृत्तः, व्यवहारमात्रसंसारसत्तानुगामिन् नास्तिक जीवेत्यर्थः।

यद्वा द्युत्यर्थत्वात् देव ! द्युतिरवरूपम् ! ब्रह्मणश्चित्स्वरूपत्वेन तद्रूपतया तदंशतया वा जीवस्य तत्स्वरूपत्वमवगन्तव्यम्। ततश्चायमर्थः— हेदेव ! हें तेजोमय ! चित्स्वरूप ! यद्वा हे देव ! ईश्वरस्य नामस्मरणमात्रतो गुणोत्कीर्तनमात्रतो वा परमपदप्राप्तिरितिसिद्धांतात् हेस्तुतिकारिन् ! अथवा नवधा भक्त्युपासनेन स्तुतिकारणतयाऽस्य देवत्वमिति।

अथवा भाम्, उक्तरीति से ईश्वर के गुण और कर्मों का गान भक्ति से जो करता है वह भाग है। संबोधन में हे भाग! द्वैतविशिष्ट अद्वैतवादिन् भक्ति से परमेश्वर की आराधना करने वाले ?

अथवा भम्– कहते हैं नक्षत्र को विशेष पुण्योदय के कारण ध्रुवादि के सदृश नक्षत्र स्वरूप को जो सर्वतोभाव से प्राप्त होता है उसको भाग कहते हैं। अथवा भम्—नक्षत्र को जो प्राप्त करता है वह भाग है, अथवा नक्षत्र लोक स्वर्गस्वरूप होने से वा स्वर्ग में नक्षत्र स्थित होने से तात्स्थात् स्वर्ग में उपचार है। तो भं स्वर्ग को सर्वतोभाव से जो प्राप्त करता है वह भाग है। मीमांसकों के मन में यज्ञादि से जीव को स्वर्ग प्राप्त होता है।

स्वर्ग की इच्छा वाला यज्ञ करे इत्यादि श्रुतियां इसमें प्रमाण हैं। तो यह अर्थ हुआ कि हे भागः यज्ञादि कर्म से स्वर्ग जानेवाले हे जीव ! इस प्रकार सब सिद्धान्तों में जान लेना चाहिये।

इसके अनन्तर फिर भी जीव को वा भक्त को संबोधित करता है। दो बार बाँधा हुआ पक्का बाँधा जाता है इस नियम से, अपनी ओर

यद्वा हे देव ! हेमोदप्रिय ! देवलोकाभिलाषात्वेनास्य मोदप्रियत्वं व्यज्यते ।

यद्वा हे देव ! हेमदोन्मत्त ! ईश्वरवैमुख्येन संसारसुखैकमात्रानुरञ्जनान्मदोन्मत्तत्वमवगन्तव्यमिति । अथवा लोकप्रसिद्धो राजा ईश्वरः । अंगनाऽलिंगनादिजन्यं सुखं स्वर्गम् । अहमेव यथासंभवं संसारपदार्थकर्ता नास्तीश्वरः स्वर्गोवेत्याद्यध्यवसायान्नास्तिकत्वेनमदयुक्तत्वमवगन्तव्यमिति ।

यद्वा देवेति शयनकर्तः ! मोक्षप्रापकं मनुष्यदेहमवाप्य पुनरपि तथाविधकर्मकरणे, उदासीन इति शयनकर्तृत्वमौपचारिकमवगन्तव्यम् । अथवा धर्माद्युपार्जने निरपेक्षत्वात्सुप्त एवेति ज्ञेयम् ।

यद्वा हेदेवेति हे गमनशील ! तथाविधकर्मकरणतः पुनः पुनरावृत्तेः पुनः पुनर्जन्म मरणादिना संसारभ्रमणकारिन् ! स्वर्गप्राप्तावपि क्षीणे पुण्ये

आकर्षित करने के लिए दो बार कहा हुआ अनुचित नहीं समझना चाहिए ।

हे देव ! दीव्यतीति देव ! क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति अर्थवाली दिव् धातु से पचादित्वात् अच् प्रत्यय किया, गुण किया तो देव सिद्ध हुआ सम्बोधन में हे देव ! हे क्रीडा की इच्छा वाले अर्थात् संसार क्रीडा में अनुराग रखनेवाले अथवा हे देव ! हे विजय की इच्छावाले शुभकर्म करने के कारण कर्म को नाश करने से संसार को जीतनेवाले जीव ! अथवा माता-पिता स्त्री आदि के सुख में ही प्रवृत्त व्यवहार मात्र संसार सत्ता को मानने वाले नास्तिक जीव !

अथवा द्युति अर्थ होने से देव ! द्युतिस्वरूप ! ब्रह्म के चित स्वरूप होने से तद्रूपता से वा तदंशता से जीव को तत्स्वरूप जानना चाहिए । तो यह अर्थ हुआ हे देव ! हे तेजोमय: हे चित्स्वरूप ! अथवा हे देव ! ईश्वर से नाम स्मरण मात्र से वा गुणों के कीर्त्तन मात्र से

मर्त्यलोके वसन्तीति जगति परिभ्रमणशीलत्वमस्य मोक्षानुपलब्धेरवगन्तव्यम् ननु अपामसोमममृता अभूम, इत्यादि श्रुतिबलादमृतत्वेन मोक्षोपलब्धिरित स्वर्गप्राप्त्यनन्तरं न पुनरावर्त्तनमिति चेन्न अत्र,अमृतपदस्य चिरकालावस्थायित्वमात्र बोधनात्। यज्ञादिजन्यस्य स्वर्गस्य जन्यत्वेनानित्यत्वात्, न मोक्षरूपत्वम्।

केवलज्ञाने तत्वज्ञाने वा कर्मणां समूलोन्मूलनादभावरूपत्वात् कर्मणां, जीवस्य स्वत एव स्वस्वरूपोपलब्धिरिति तन्नये नित्य एव मोक्षः। तथा च श्रुतिः "न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते" इति एवं सर्वसिद्धान्तेषु याथयथमवगन्तव्यमिति।

एवं तमुन्मुखीकृत्य किंकथयतीत्याह। तादरो, इति तश्च, आदरश्च तादरौ तकारश्चौरः स च सकल संसारस्य स्वस्मिंल्लयकारकत्वाच्चौरः।

उत्तम पद प्राप्त होता है, इस सिद्धान्त से हे स्तुति करने वाले! अथवा नौ प्रकार की भक्ति करने से स्तुति करने से इसको देवत्व हुआ।

अथवा हे देव! हे मोदप्रिय देव लोक की अभिलाषा होने से इसको मोदप्रिय कहा गया है।

यद्वा हे देव! हे मदोन्मत्त! ईश्वर से विमुख होने पर केवल संसार के सुखों में प्रेम रखने से मदोन्मत्त अर्थ जानना चाहिये।

अथवा लोक प्रसिद्ध राजा ईश्वर है, स्त्री का आलिंगन करने से उत्पन्न सुख स्वर्ग है। मैं ही यथा शक्ति संसार के पदार्थों को करने वाला हूँ ईश्वर नहीं है स्वर्ग भी नहीं है इत्यादि नास्तिक विचार से मदयुक्त जानना चाहिये।

अथवा हे देव! हे शयन करने वाले मोक्ष को प्राप्त करने वाले मनुष्य शरीर को पाकर फिर भी उस प्रकार के अच्छे कर्म करने में उदासीन हो इस प्रकार शयन कर्तृत्व अर्थ जानना चाहिये। अथवा धर्म प्राप्त करने में निरपेक्ष होने से सोया हुआ यह जानना चाहिये।

यद्वा शरणागतानां स्मर्तॄणां च, अशुभकर्मसंहारकत्वाच्चौरः। तथाचोक्तमेकाक्षरकोषे। तकारः कीर्तिश्चौरे, इति। तथा, आदरः सर्वभविकजनैः पूज्यतयागृहीतः। पुनर्द्वयोर्द्वन्द्वे तादरौ तादरौ मम सत्वम्-अस्तित्वम्। भक्तमयम् हि इति निश्चयेन। तादरौ इत्यस्य सत्वेन विशेष्यविशेषण भावः। अजहल्लिंगता च वेदाःप्रमाणमितिवत्। ततश्चायमर्थः-सकलाशुभकर्मसंहारकारकमादरणीयं च ममास्तित्वं भक्तमयं भक्तस्वरूपम्। भक्तस्वरूपेणैव ममास्तित्वमवतिष्ठते। उक्तं हि—'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद! च शब्द एवकारार्थः। तत्रैव तिष्ठामीत्यर्थः मद्भक्तेष्वेव मम स्थितिः। ततश्च मद्भक्तपूजनेऽहं पूजितो भवामि। मद्भक्ता मत्स्वरूपतयाऽवतिष्ठन्त इति तात्पर्यार्थः।

अथवा हे देवेति हे गमन शील उस प्रकार के कर्म करने से वार बार आवर्तन से बार बार जन्म मरण से संसार में भ्रमण करने वाले, स्वर्ग प्राप्ति होने पर भी पुण्यहीन होने पर मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार संसार में भ्रमणशील इसको, मोक्ष प्राप्ति न होने से जानना चाहिये। अपामसोममममृता अभूम इत्यादि श्रुति वल से अमृतत्व से मोक्ष प्राप्ति होती है इस प्रकार स्वर्ग प्राप्ति होने पर पुनः जन्म-मरण नहीं होता, यह ठीक नहीं। इस प्रमाण में अमृत पद का चिर काल स्थायी मात्र अर्थ है। यज्ञ से प्राप्त स्वर्ग जन्यपदार्थ होने से अनित्य है, मोक्षरूप नहीं है। केवल ज्ञान होने पर वा तत्व ज्ञान होने पर कर्मों के समूल नाश होने से कर्मो के अभाव रूप होनें में जीव को स्वयं ही अपने स्वरूप की प्राप्ति होती है, इस मत में नित्य ही मोक्ष है। श्रुति भी कहती है न स पुनरावर्तते इत्यादि। इस प्रकार सर्व सिद्धान्तो में यथेष्ट जान लेना चाहिये।

इस प्रकार उसको उन्मुख करके क्या कहती है, इस प्रकार तादरौ-त और आदर तादर है। त का अर्थ चौर है। सम्पूर्ण संसार को अपने में लय करने से चौर कहा गया। अथवा शरणागतों के और

यद्वा भजते, इति भक्, पुनरतिशये तमपि भक्तममिति । भक्तमम्, अतिशयेन सेवाकारकं याति प्राप्नोतीति भक्तमयम् । सेवाकारकाणां सविधे सर्वदा विद्यमानम् ।

यद्वा भक्तस्वरूपम्, तथा अयम्, स्थिरम् । न यातीति, अयम् । सर्वदा स्वस्थानस्थितमेव ममसत्वम् सर्वदा स्थिरमेव ।तत्रैव सर्वे लीयन्ते । न खलु मम सत्वं क्वचिदपि यातीत्यर्थः ।

यद्वा अयः शुभावहो विधिः । तत अर्शआदित्वादच् । अयं शुभप्रारब्धवदित्यर्थः । अथवा गत्यर्थकाद् या धातोः, 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः अं विष्णुं याति प्राप्नोतीत्ययम् । विष्णुप्राप्तम् । विष्णोः सत्वस्वरूपत्वान्मम सत्वं सत्वगुणस्वरूपमित्यर्थः ।

स्मरण करने वालों के अशुभ कर्मों को चोरने से चोर कहा गया । एकाक्षर कोष में कहा है कि तकार का अर्थ चोर है । इस प्रकार आदर का अर्थ है अच्छे जनों से पूज्यतया ग्रहण किया जाय । फिर दोनों का द्वन्द्व समास होने से तादरौ सिद्ध हुआ । मम् सत्वम् मेरा अस्तित्वम् । भक्तभयं हि, हि निश्चय अर्थ से है । तादरौ इसका सत्व से विशेष्य-विशेषण भाव सम्बन्ध है । और वेदाः प्रमाणम् के सदृश अजहल्लिंगता है ।

तो अर्थ हुआ कि सम्पूर्ण शुभ कर्मों का नाश करने वाला आदर के योग्य मेरा अस्तित्व भक्त स्वरूप है । भक्त स्वरूप से ही मेरा अस्तित्व स्थित है । कहा भी है--मैं न तो वैकुन्ठ में निवास करता हूँ न योगियों के हृदय में ही निवास करता हूँ, हे नारद--मेरे भक्त जहां मेरा गायन करते हैं मै वहीं निवास करता हूं । च शब्द का एक अर्थ है मेरे भक्तों में ही मेरी स्थिति है तो मेरे भक्तों की पूजा होने पर मेरी ही पूजा होती है । मेरे भक्त मेरे स्वरूप से ही स्थित हैं यह भाव हुआ । अथवा भज धातु से भक्त सिद्ध किया फिर अतिशय अर्थ में

कीदृशं मम सत्वमित्याह । 'भां' भां बीजस्वरूपम् अनन्ते विश्वमूर्तौ च वर्तते ! इति बीजकोषे । ततश्चायमर्थः —अनन्तं मम सत्वम्, इयत्ता-रहितमित्यर्थः । अथवा, अनन्तम्, नास्त्यन्तोऽवसानं यस्य तत्तथा । अवसानरहितम् । सर्वथा नित्यमेवेत्यर्थः । यद्वा भां विश्वमूर्तिस्वरूपम् । विश्वस्य ब्रह्मणश्चाभेद एव । ततश्च विश्वमूर्तिस्वरूपत्वे ब्रह्ममूर्तिस्वरूपत्वं स्वत एव प्रतीयते तथा च श्रुतिः । सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन इति । ततश्चायं फलितोर्थः । मम सत्वं ब्रह्मस्वरूपमेवेत्यर्थः । एवं च मम ममसत्वस्य, ब्रह्मणश्च, त्रयाणामैक्यमेव । अधिकारिभेदेन

तमयू क्रिया भक्तमम् हुआ । अतिशय करके सेवा करने वालों को जो प्राप्त हो उसको भक्तमय कहते हैं । सेवा करने वालों के पास सदा विद्यमान है ।

अथवा भक्तस्वरूप उसी प्रकार अयं जो स्थिर नहीं जाता जो उसको अयं कहते हैं । सदा अपने स्थान में ही स्थित मेरा सत्व है अर्थात सदास्थिर ही है। उसी में सब लीन होते हैं । मेरा सत्व निश्चय ही कहीं नहीं जाता है । अथवा शुभ धारण करने वाली विधि को अय कहते हैं । उससे अर्शादिअच किया तो अयं का अर्थ शुभप्रारब्ध वाला हुआ । अथवा गति अर्थ वाली या धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्र से क प्रत्यय किया, अं विष्णु को याति प्राप्त करता है जो उसको अयम् कहते हैं । अर्थात विष्णु को प्राप्त । विष्णु के सत्वस्वरूप होने से मेरा सत्व सत्वगुणस्वरूप है । कैसा मेरा सत्व है यह कहा कि भां बीजस्वरूप अनन्त विश्वमूर्ति में है । यह बीज कोष में लिखा है । तो यह अर्थ हुआ कि अनन्त मेरा सत्व सर्वथा परिमाण रहित है । या अनन्त माने नहीं है अन्त जिसका उसको अनन्त कहते हैं । अर्थात अन्त रहित । सर्वथा नित्य है । अथवा भां माने विश्वमूर्ति स्वरूप, विश्व का और ब्रह्म का अभेद ही है, तो विश्वमूर्ति स्वरूप में ब्रह्ममूर्ति

ज्ञानवैषम्यात् किञ्चिद्भेदः प्रतीयते । वास्तविकविचारे ऐक्यमेवेति मत्स्वरूपं ब्रह्मस्वरूपमेवेत्यर्थः । अहं मत्सत्वं ब्रह्मचेति त्रयमप्येकमेव । अधिकारिभेदात्, भेदप्रतीतिः । क्रमशस्तथाविधज्ञानोदयाद्भेदप्रतीतिनाशे अभेदावगमो भवति । सर्वमेतत्तथाविधि श्रुतिबलात् कल्प्यते तथाहि—तत्त्वमसि—अत्र तत्पदेन ब्रह्मणो ग्रहणम् । त्वमित्यनेन जीवस्य ग्रहणम् । एवं च त्वं जीवस्तद्ब्रह्मस्वरूपमसि । अत्र वक्ताजीवो ब्रह्मचेति त्रयाणांप्रतीतिः ।

अथ ज्ञानोदयात् किञ्चिद्भेदप्रतीतिनाशे सोऽहमिति प्रतीतिर्जायते । अस्यां प्रतीतौ च सः अहं चेति द्वयमेव भासते । अथ पुनरज्ञानपटलनाशे भेदप्रतीतेर्नाशात्सर्वथा, अभेद एव प्रतीयते । ततश्च अहमेवेति प्रतीतिरूपजायते । तदेतत्सर्वमेवाभिप्रेत्योक्तम् मां विश्वमूर्तिस्वरूपं मत्सत्वम् । अहमेवविश्वस्वरूपमित्यर्थः पूर्वं संक्षेपतया प्रतिपादिनम् अत्र विशिष्य प्रतिपादने न पुनरुक्तत्वदोषोऽवगन्तव्यः इति ।

स्वरूप स्वयं प्रतीत है । श्रुति भी कहती है । यह सब निश्चय से ही ब्रह्म है, ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं है । यह फलितार्थ हुआ कि मेरा सत्व ब्रह्म स्वरूप ही है । इस प्रकार मेरा मेरे सत्व का और ब्रह्म का इन तीनों का ऐक्य ही है । अधिकारी भेद से ज्ञान में वैषम्य होने पर कुछ भेद प्रतीत होता है । वास्तविक में एक ही है, मेरा स्वरूप ब्रह्मस्वरूप ही है । मैं मेरा सत्व और ब्रह्म तीनों एक ही हैं । अधिकारी भेद से भेद प्रतीति है । क्रमपूर्वक उस प्रकार के ज्ञान के उत्पन्न होने से भेद की प्रतीति नाश होने पर अभेद ज्ञान होता है । यह सब उस प्रकार की श्रुति गम्य है । जैसे तत्त्वमसि इसमें तत् पद से ब्रह्म का ग्रहण है और त्वम जीव का ग्रहण है । इस प्रकार तू जीव उसब्रह्म का स्वरूप है । यहां बोलने वाला, जीव और ब्रह्म तीनों की प्रतीति होती है । इसके अनन्तर ज्ञान के उदय होने पर भेद बुद्धि का नाश हो जाता है और सोऽहम् की प्रतीति होने लगती है । इस प्रतीति

यद्वा भामिति बीजं कालादिस्वरूपे। वर्तते। ततश्चायमर्थः। मम सत्वं कालादेस्स्वरूपं वर्तते। सकलसंहारकारकत्वान्मय्येव प्रलयेऽवस्थानम्। अथवा मम सत्वं कालस्वरूपम्। शिवस्वरूपमित्यर्थः। अथवा कालः समयः। तत्प्रवर्तकः सूर्यः। समयसमयप्रवर्तकयोरभेदोपचारात् तत्स्वरूपं ममसत्वमित्यर्थः एवं च सूर्यरूपम् तेजपुञ्जात्मकतया विद्यमानं ममसत्व-मितिभावः।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह, हां, हा, इतिविषादः, आम् ज्ञानं यस्मिन्निति हाम्। आपाततः परमात्मना सह ममाभेदास्तित्वज्ञाने साक्षा-त्स्वरूपानुपलब्धेर्निषादजनकत्वाद्विषादज्ञानवदित्यर्थः। अयं भावः —

में वह और मैं दोनों हो भासमान हैं। फिर अज्ञान समूह के नाश होने पर भेद की प्रतीति नाश होने से सर्वथा अभेद ही प्रतीत होता है। इसके अनन्तर मैं ही हूं यह प्रतीति उत्पन्न होती है। तो इन सब बातों को लेकर कहा कि 'भां' विश्वमूर्ति स्वरूप मेरा सत्व है, और मैं ही विश्वस्वरूप हूं।

अथवा भां यह बीज कालादि स्वरूप में है। तो यह अर्थ हुआ कि मेरा सत्व कालादि स्वरूप है। सम्पूर्ण संहार करने से मुझमें ही प्रलय स्थित है। अथवा मेरा सत्व काल स्वरूप है। अर्थात् शिव स्वरूप है। अथवा काल माने समय, उसका प्रवंतक सूर्य है। समय और समय के प्रवंतक में अभेदोपचार होने से उसका स्वरूप मेरा सत्व है। इस प्रकार सूर्य का रूप तेज का समूह, होने से विद्यमान मेरा सत्व है यह भाव हुआ।

फिर कैसा मेरा सत्व है—इस प्रकार हां, हा माने विषाद और आम् माने ज्ञान, है जिसमें, उसको हाम् कहते हैं। सर्व प्रकार से परमात्मा के साथ मेरा अभेदज्ञान होने पर साक्षात् स्वरूप की अनु-पलब्धि होने से विस्मय होने से विषाद ज्ञान वाला है यह अर्थ हुआ।

योगाभ्यासदशायाम्, अथवा मम दर्शनात् किञ्चिदज्ञानपटलनाशे प्रथमं कदाचित् किञ्चिन्मम स्वरूपसाक्षात्कारे पुनर्झटिति सर्वतो भावेन मत्स्वरूपानुलब्धेर्विषादजननात् इत्युक्तं विषादस्वरूपम् यद्वा हां दुखज्ञानस्वरूपम्। मत्स्वरूपदर्शने वैराग्योदयात् पुत्रकलत्रादीनां त्यागे तेष्वेव मोहोदयात् तेषां च वियोगदुःखजनकत्वात्, दुःखस्वरूपमित्यर्थः। 'हा विषादे च शोके च दुःखार्थेऽपि च कथ्यते' इति विश्वः।

यद्वा हः शिवः अकारो विष्णुः, तयोर्द्वन्द्वः, हौ। तयोः, आम्, सत्यतया ज्ञानं यस्मिन्निति हाम्। हरिहरस्वरूपमित्यर्थः। हः शिवे सलिले शून्ये धारणे मंगलेऽपि च। गगने नकुलीशे च रक्ते नाके च वर्तते, इति मेदनी। ततश्च यथायथं विभिन्नसिद्धान्तनीत्या सर्वसिद्धान्तेषु सम्बन्ध-

---

अभिप्राय यह है कि योगाभ्यास दशा में अथवा मेरे दर्शन से कुछ अज्ञान समूह नाश होने पर पहले कभी किंचित मेरे स्वरूप के साक्षातकार होने पर फिर शीघ्र ही सर्वतोभाव से मेरे स्वरूप की प्राप्ति न होने पर विषाद उत्पन्न होने से विषादस्वरूप कहा। अथवा हां दुःख ज्ञानस्वरूप है। मेरे स्वरूप के देखने पर वैराग के उत्पन्न होने से पुत्र स्त्री आदि का त्याग करने पर उन्हीं में प्रेम होने से उनके वियोग से दुःख उत्पन्न होने से दुःख स्वरूप है यह अर्थ हुआ। हा, विषाद शोक और दुःख अर्थ में भी है यह विश्वकोष में कहा है।

अथवा ह का अर्थ है शिव, अ का अर्थ है विष्णु। इन दोनों को द्वन्द्व समास होने से हा हुआ। उन दोनों का आम् माने सत्यता से ज्ञान है जिसमें उसको हाम् कहते हैं। अर्थात हरि हर स्वरूप है। ह, शिव, सलिल, शून्य, धारण, मङ्गल, गगन, नकुलीश, रक्त, और स्वर्ग अर्थ में है, यह मेदिनी कोष में लिखा है। तो यथेच्छ भिन्न भिन्न सिद्धान्तों की नीति से सर्वसिद्धान्तों में इसका सम्बन्ध कर लेना चाहिये। वह इस प्रकार कि ह शिव और आम् सत्यज्ञान रूप है

नीयम् । तच्चैवं ह शिवः आम्, सत्यज्ञानरूपं, यस्मिन्निति हाम् । शेते जगदस्मिन्निति सकलचराचरस्य लयस्थानमिति ब्रह्मस्वरूपं मम सत्व-मित्यर्थः ।

यद्वा हं सलिलम् आं ज्ञानं यत्रेति, आपोनारा इति प्रोक्ताः, इति पौराणिक प्रक्रियानुसारेण नारायणस्वरूपं मम सत्वमित्यर्थः ।

यद्वा हं शून्यम्, आम्, सत्यत्वेन प्रतीयमानं ज्ञातमित्यर्थोयस्मिन्निति हाम् । शून्यस्वरूपम् । शून्यस्वरूपेण संसारास्तित्ववादिबौद्धसिद्धान्तनये तथावगन्तव्यमित्यर्थः ।

यद्वा हं धारणं कच्छपवाराहरूपेण आं यस्मिन्निति । ब्रह्मणा निर्मितायाःपृथिव्या गोवर्धनस्य वा हं धारणां आं सत्यतया ज्ञातं यत्रेति कच्छप-वाराहकृष्णावतारस्वरूपं ममसत्वमित्यर्थः । एतेन पौराणिकसिद्धान्तनयोऽवग-न्तव्यः । तान्प्रत्युपदेशस्वरूपः फलितो भवतीति भावः ।

जिसमें उसको हाम् कहते हैं । सोता है संसार इसमें इस प्रकार संपूर्ण चराचर का लयस्थान ब्रह्मस्वरूप मेरा सत्व है ।

अथवा हं माने जल आ माने ज्ञान है जिसमें, "आपानारा इति-प्रोक्ताः" इस पौराणिक प्रक्रिया के अनुसार नारायण स्वरूप मेरा सत्व है ।

अथवा हं शून्य आम् सत्यत्वेन प्रतीयमान जाना यह अर्थ जिसमें हो उसको हाम् कहते हैं । अर्थात शून्यस्वरूप । शून्य स्वरूप से संसार को अस्तित्व मानने वाले बौद्धों के सिद्धान्त में यह जानना चाहिये । अथवा हं धारण, कच्छपवराह रूप से आम् जिसमें है उसको हाम्, कहते हैं । ब्रह्मा से निर्मित पृथ्वी का अथवा गोवर्धन पर्वत का हं धारण और आं सत्यतया ज्ञान है जिसमें उसको हां कहते हैं । कच्छप वराह कृष्णावतार स्वरूप में मेरा सत्व है । इससे पौराणिकों के सिद्धांत का नियम जान लेना चाहिये । उनके लिये उपदेश का स्वरूप फलित

यद्वा हं मंगलम्, आम्, सत्यत्वेन यत्रेति हाम्। आर्हतसिद्धान्ते हि प्रधानदशवैकालिकसूत्रे "धम्मोमङ्गलमुक्किट्ठोअहिंसा संयमो तवो" (धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टोऽहिंसा संयमस्तपः) इत्युपक्रम्य, अहिंसादीनामुत्कृष्टधर्माणां मङ्गलत्वं स्वीकृतम्। पुनस्तत्रैव तद्व्याख्याने हरिभद्रसूरिभिः मगि धातुर्गत्यर्थे येन हितं तेन मङ्गलं भवति। यद्वा मङ्गो धर्मस्तं लाति ददत आदत्ते इत्येवं विविच्य अहिंसा संयमतपसां कारणं मङ्गलमिति निर्धारितम्। ततश्च—इद फलितं भवति, अहिंसासंयमतपःस्वरूपं मङ्गलस्वरूपं वा मम सत्वमित्यर्थः।

यद्वा हः नाकः आं यत्रेति हाम्। नाकस्वरूपमित्यर्थः। स्वर्गकामो यजेतेत्यादिप्रतिपादितस्वरूपं मम सत्वमिति भावः। एवं च तत्तत्सिद्धान्तानुयायिभिः स्वस्वसिद्धान्तानुसारेण तथा तथा कल्पनीयम्। एतदेव योगिनां वाण्यां अलौकिकत्वंम् यत्सर्वेषामपि हृदि सामानाकारेण स्वस्वाभिमतोऽर्थोऽवगम्यते। स्वस्वाभिमतदेवाराधनया अभीष्टसिद्धिरवश्यं

हो जाता है।

अथवा हं मंगल और आम् सत्यतया है जिससे उसको हाम् कहते हैं। आर्हत सिद्धान्त में प्रधान दश वैकालिक सूत्र में, उत्कृष्ट धर्म अहिंसा संयम और तप मंगल है, इस प्रकार कह कर अहिंसादि अच्छे धर्मों को मंगल स्वीकार किया है। फिर वहीं उसके व्याख्यान में हरिभद्रसूरि ने कहा है कि मगि धातु गति अर्थ में है जिससे कल्याण हो, उसको मंगल कहते हैं। अथवा मंग कहते है धर्म को। उसको जो स्वीकार करे और देवे, इस प्रकार विवेचना करके अहिंसा संयम और तप का कारण मंगल है, यह निश्चय किया। तो यह फलितार्थ हुआ कि अहिंसा, संयम और तप स्वरूप अथवा मंगल स्वरूप मेरा सत्व है।

अथवा ह स्वर्ग आं है जिसमें उसको हाम् कहते हैं। अर्थात स्वर्गस्वरूप। स्वर्ग की इच्छा वाला यज्ञ करे इत्यादि से प्राप्त स्वरूप मेरा सत्व

भविष्यति । क्षणेन भवेद्विलम्बेन वेति तु तथा भूतदेवसामर्थ्यंगम्यम् । तत्तदभीष्ट देवाराधनया तत्तत्कर्माचरणतो वा कियत्काल पर्यन्तं कुत्र स्थितिरित्यादि च सर्वं स्वस्वपुण्यबलात् स्वस्वदेवप्रभावाद् वा कल्पनीयम् । यद्यपि सर्वोऽपि लोकः स्वस्वदेवं स्वस्थानप्रापकं मन्यते तथापि तत्तत्स्थानप्रापकपुण्यभोगानन्तरमवश्यमेव पुनर्मर्त्यलोके गमनादकिञ्चित्करमेव तत् योगाभ्यासान्मम कृपातो वा सकलकर्मनाशे मोक्षे च कर्माभावात्किं कृतं जन्म स्यादिति विस्पष्टमेव । योगाभ्यासे देवीदेवपूजनादौ वा पुरुषाणां प्रवृत्तिः स्वस्वप्रकृत्यनुसारात् ।

एतदेवाभिप्रेत्योक्तम्—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।

कदाचिच्च सत्वरजस्तमसामुद्रेकाद् विभिन्नाऽपि प्रवृत्तिर्भवति । एवं

है यह भाव हुआ । इस प्रकार उन उन सिद्धांतो को मानने वाले अपने अपने सिद्धांतो के अनुसार वैसी वैसी कल्पना कर लें । यही योगियों की वाणी में अलौकिक चमत्कार है, जो कि सबके हृदय में समान भाव से अपने अपनें अभिमत अर्थों का ज्ञान हो जाता है । अपने अपने अभिलषित देवताओं की उपासना से मन वांछित सिद्धि अवश्य होगी । शीघ्र हो या बिलम्ब से हो यह तो उस देवता की शक्ति के अनुकूल है । उस उस अभिलषित देवता की उपासना से अथवा उस उस कर्म के करने से कितने समय तक कहां स्थिति है यह सब अपने अपने पुण्य के बल से अथवा अपने अपने देवता के प्रभाव से कल्पना कर लेनी चाहिये । यद्यपि सब लोग अपने अपने देवता को

च यद्देवस्याराधनं क्रियते तद्देवस्यैवस्थाने ष्याराधकेन गम्यते, उक्तमेवैतद् यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि मां। एवं स्वाभीष्टदेवाराधनायामपि आराधनाया उत्तममध्यमाधमभेदात् सायुज्यसारूप्यसामीप्यमुक्तिरवगन्तव्या वस्तुतस्तु ब्रह्मणो ब्रह्मस्वरूपान्मत्तोऽतिरिक्तानां देवानां विषयेषु वास्तविकमुक्तेरभावात्पुनरागमनमेवेति स्वयमेव विद्वद्भिरवगन्तव्यमिति।

पुनः किं विशिष्टं मम सत्वमित्याह—हिं-हिंकारस्वरूपम्। हिंकारो हि अप्रतिषेधव्रतस्वरूपः। तच्चैवमुपपद्यते, यदेव कश्चिद् याचेत तदेव दद्यात्। नह्यत्र किञ्चिदपि विचारयेत्। इदं च सर्वसिद्धान्तेषु समानतयोन्नेयमिति।

उस देवता के स्थान में पहुँचाने वाला मानते हैं, तो भी उस देवता के स्थान में प्राप्त पुण्य को भोगने के अनन्तर अवश्य मर्त्यलोक में आना पड़ेगा, इसलिए यह अकिंचित है, अर्थात निस्तत्व है। योगाभ्यास से अथवा मेरी कृपा से सब कर्मों के नाश होने पर मोक्ष होने से कर्मों के अभाव होने पर जन्म-मरण से छूट जाता है यह स्पष्ट ही है। योगाभ्यास से देवी अथवा देवता की पूजा में पुरुषों की प्रवृत्ति अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार है। इसी बात को लेकर कहा है कि—कोई त्रयी माने वैदिक मत को मानते हैं, कोई सांख्ययोग को मानते हैं, कोई शैव मत को मानते हैं, कोई वैष्णव मत को मानते हैं, इस प्रकार भिन्न भिन्न मार्ग हैं। कोई किसी मार्ग को अच्छा बतलाता है कोई किसी मार्ग को अच्छा बतलाता है, क्योंकि अपनी अपनी रुचि भिन्न है। जिस प्रकार सब जल समुद्र को प्राप्त होता है इसी प्रकार सीधे टेढ़े और अनेक मार्ग से सेवा करने वाले मनुष्य केवल आपको ही प्राप्त करते हैं। कभी सत्व रज और तमोगुण के भेद से विभिन्न प्रवृत्ति भी होती है। इस प्रकार जिस देव की

पुनः किं विशिष्टं मम सत्वमित्याह—ह्रौं, ह्रौं बीजस्वरूपम् । ह्रौमिति शिवबीजरूपम् । शेते जगदस्मिन्निति शिवः । सकलचराचरस्य लयस्थानत्वेन ब्रह्मस्वरूपमित्यर्थः । अथवा शिवः आशुतोषो भगवान् गौरीशंकरस्तत्स्वरूपं मम सत्वमित्यर्थः । एतेन शैवमतमवगन्तव्यम् । अथवा शिवं कल्याणम्, तत्स्वरूपं मम सत्वम् । एतेन मोक्षसाधकसांख्यार्हतादिमतानां ग्रहणं बोध्यम् । मोक्षसाधकसिद्धान्तस्यैव कल्याणकरत्वमवगन्तव्यम् ।

यद्वा ह्रौमिति प्रसादबीजम् मम सत्वं सर्वदा प्रसादस्वरूपम् । अथवा प्रसन्नताया जनकम् । मम मत्सत्वेन सहाभेदात् सत्वस्वरूपान्मत्तः प्रादुर्भूतेषु चराचरेषु प्रसन्नतायाः प्रादुर्भावो भवतीत्यर्थः । अयं भावः । मम सच्चिदानन्दत्वेन मत्तो जायमानस्य चराचरस्य आनन्दमयत्वमव्याहतमेव ।

उपासना भक्त करता है, उसी देवस्थान को भक्त जाता है । गीता के ९ वें अध्याय के २५ श्लोक में भगवान भी स्वयं कहते हैं । देवताओं के भक्त देवलोक को जाते हैं । पितरों के भक्त पितृलोक को जाते हैं । भूतों की आराधना करने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं, और मेरी उपासना करने वाले मुझको ही प्राप्त होते हैं । इस प्रकार अपने अभिलषित देवता की उपासना में भी उपासना के उत्तम, मध्यम, अधम भेद से सायुज्य सारूप्य सामीप्य मुक्ति जान लेनी चाहिये । वास्तविक में ब्रह्म से अथवा ब्रह्म स्वरूप मुझसे अतिरिक्त देवताओं के विषय में वास्तविक मुक्ति का अभाव होने से फिर जन्म लेना अवश्य ही होगा यह विद्वान लोग स्वयं जान लें ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि ह्रिं ह्रिंकार स्वरूप । ह्रिंकार है रुकावट रहित व्रत स्वरूप । उसका उपपादन इस प्रकार किया गया है कि, जो कोई जो कुछ मांगे उसको वही देवे, इसमें कुछ भी विचार न करे । यह सब सिद्धांतों में समान भाव से जान लेना चाहिए ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि 'ह्रौं' ह्रौं बीज स्वरूप । ह्रौं यह शिव-

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह हं हं स्वरूपम् । हमिति परमात्मनो बोधकम् । ततश्चायमर्थः परमात्मस्वरूपं मम सत्वमस्ति । एतेन परमात्मनोऽभिन्नं मम सत्वं वर्तत इति भावः ।

यद्वा हमिति हंसस्वरूपम् जीवस्वरूपं मम सत्वमस्तीत्यर्थः । जीवस्य परमात्मन एव स्वरूपत्वात्परमात्मनोंऽशत्वाद्वा अंशांशिभावेन कल्पनीयम् । एतेन अद्वैतविशिष्टाद्वैतमतादीनामनुसरणं कृतं भवति । हंस इति जीवस्य संज्ञा । तथा चोक्तं नैषधे श्रीहर्षेण हंसं तनौ सन्निहितं चरन्तमित्यादि ।

यद्वा हमिति शिवस्वरूपम् कल्याणस्वरूपमित्यर्थः एतेन मोक्षस्वरूपकल्याणसाधकानाम् अद्वैतार्हतादिमतानाम् ग्रहणनावगन्तव्यम् ।

यद्वा हमिति व्योमस्वरूपम् शून्यस्वरूपमित्यर्थं । एतेन शून्यवादिनां बौद्धानां ग्रहणं कृतं भवति ।

बीज रूप है । संसार इसमें सोता है इसलिए इसको शिव कहते हैं । संपूर्ण चराचर का लयस्थान होने से शिव ब्रह्मस्वरूप है, अथवा शिव माने शीघ्र प्रसन्न होने वाले भगवान गौरीशंकर मेरा सत्व है । इससे शैव मत भी जान लेना चाहिये । अथवा शिव माने कल्याण स्वरूप मेरा सत्व है । इससे मोत्तसाधक सांख्य अर्हतादिकों के मत का ज्ञान कर लेना चाहिये । मोच को सिद्ध करने वाले सिद्धान्त को ही कल्याण करने वाला जानना चाहिये ।

अथवा ह्रौं यह प्रसाद बीज है । मेरा सत्व सदा प्रसन्न स्वरूप है । अथवा प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाला है । मेरा मेरे सत्व के साथ अभेद होने से सत्वस्वरूप मुझसे उत्पन्न होने वाले चराचरों में प्रसन्नता प्राप्त होती है । भाव यह है कि मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप होने से मुझसे उत्पन्न होने वाले चराचर की आनन्दमयता निश्चित ही है ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि, 'हं' हंस्वरूप । हं यह परमात्मा का बोधक है । तो यह अर्थ हुआ कि परमात्मास्वरूप मेरा सत्व है । इससे

यद्वा हमिति कविः। कविर्विद्वान्। ततश्च ममसत्वं विद्वत्स्वरूपमित्यर्थः। एतेन सदसद्विवेककारित्वम् मदुपासनया मत्सत्वप्राप्तिर्भवतीत्यनगन्तव्यम्। विद्वानेव देव इति सामाजिकाः।

यद्वा हमिति कूटस्थमुच्यते। ततश्च कूटस्थं पुरुषस्वरूपं मम सत्वं पुष्करपलाशवन्निर्लेपमित्यर्थः। उक्तं हि मूलप्रकृतिविकृतिर्महाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः। एतेन प्रकृतिविकृतिरहितं कूटस्थं पुरुषस्वरूपं मम सत्वमिति सांख्यसिद्धान्त उन्नीतो भवति।

यद्वा हमिति कोपनिवारणम् इति वर्णबीजप्रकाशे उक्तम्। ततश्च कोपो निवार्यतेऽनेनेति कोपनिवारणम्। करणाधिकरणतश्चेति करणे ल्युट्। मम सत्वप्रभावाच्छत्रवोऽपिवश्या भवन्ति। अथवा ममोपासनया

यह अभिप्राय हुआ कि परमात्मा से अभिन्न मेरा सत्व है। अथवा 'हं' यह हंसस्वरूप है। जीवस्वरूप मेरा सत्व है यह अर्थ हुआ। जीव परमात्मा का ही होने से अंश और अंशीभाव की कल्पना कर लेनी चाहिये। इससे अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का अनुसरण किया गया है। हंस यह जीव की संज्ञा है। नैषध में श्रीहर्ष ने भी 'हंसं तनौ सन्निहितं चरन्तम्' इत्यादि कहा है।

अथवा 'हं' यह शिवस्वरूप कल्याण स्वरूप है। इससे मोक्ष स्वरूप कल्याणसाधक अद्वैत अर्हतादिकों का मत जान लेना चाहिये।

अथवा हं यह आकाश स्वरूप है। अर्थात शून्य स्वरूप। इससे शून्य वादि बौद्धों का ग्रहण किया है।

अथवा हं का अर्थ है कवि। कवि माने विद्वान। तो यह अर्थ हुआ कि मेरा सत्व विद्वत्स्वरूप है। इससे भले बुरे विचार करने वाली मेरी उपासना से मेरे सत्व की प्राप्ति होती है, यह जान लेना चाहिए। विद्वान ही देवता है यह सामाजिक मत भी है।

अष्टविधिसिद्धियुक्तः स जायते तेन तत्समक्षं प्राप्तस्य पुरुषस्य स्वत एव वैरमुपशाम्यति ! अहिनकुलस्य गोव्याघ्रस्यापि परस्परं तत्र वैरभावो न भवति, किमित पुरुषस्य। एतेन मम सत्वप्रभावसिद्धस्य योगिराजस्य समक्षं कोपनिवारकत्वेन योगसाधकं मम सत्वमित्यवगन्तव्यमिति दिक्।

अथ पुनस्तमेव सत्वं विशिनष्टि। पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह। ह्रीमिति ह्रीमिति अप्रतिषेधव्रतस्वरूपम्। अत्र अप्रतिषेधव्रतस्वरूपयोर्ह्रस्वदीर्घयोर्हिंकारह्रींकारयोग्रहणाल्लघुकालिकं दीर्घकालिकं चेतदित्यवगन्तव्यम्। उभयथाऽपि तथाभूतव्रतपतिपालने ह्रस्वदीर्घयोः सिद्ध्योः समुपलम्भात्। अत्र ह्रस्वहिंकारग्रहणेनेदं बोध्यते। यत् स्वल्पकालिकतथाभूत व्रतग्रहणेन स्वल्पकालावस्थायिनी स्वल्पदेशावस्थायिनी वा सिद्धिरूपजायते। अथवा ह्रस्वा क्षुद्रा सिद्धिरूपलभ्यते। यथा कस्यचिद्विनष्टस्य वस्तुनः

अथवा हं कूटस्थ को कहते हैं। तो कूटस्थ पुरुषस्वरूप मेरा सत्व कमल के पत्ते के समान निर्लेप है। कहा भी है कि मूल प्रकृति विकार रहित है। और महदादि सात किसी की प्रकृति हैं और किसी की विकृति हैं। सोलह तत्व विकारयुक्त हैं, पुरुष न तो प्रकृति है और न विकृति है। इससे प्रकृति विकृति रहित कूटस्थ पुरुष स्वरूप मेरा सत्व है, इस प्रकार सांख्य सिद्धान्त उपस्थित हो जाता है।

अथवा हं का अर्थ है क्रोध को छोड़ना, यह वर्णबीज प्रकाश में कहा है। तो कोपनिवारण किया जाय जिससे उसको कोपनिवारण कहते हैं। करणाधिकरणयोश्च सूत्र से ल्युट् होता है। तो अभिप्राय यह हुआ कि मेरे सत्व के प्रभाव से शत्रु भी वश में हो जाते हैं। अथवा मेरी उपासना से अणिमादि आठो सिद्धियों से युक्त मनुष्य होता है। उससे उसके पास उपस्थित हुए पुरुष का वैर आप ही शान्त हो जाता है। सांप नेवला और गौव्याघ्र का भी परस्पर वैर भाव नहीं होता है तो पुरुषों का होना ही क्यों है। इससे मेरे सत्व

पुनः प्राप्तिः पुत्रधनादिवरप्रदानं चेत्यादि। एवमेव दीर्घह्रींकारग्रहणेनेद-मवगम्यते। यद् दीर्घकालिकतथाभूतव्रतग्रहणेन दीर्घकालिकी अपरिमित-देशावस्थायिनी च सिद्धिरुपलभ्यते। अथवा दीर्घह्रींकारेण दीर्घा महती सिद्धिरुपलभ्यते। यथा अन्यस्यापि अभ्यासाद्यभावेऽपि ईश्वरसाक्षात्कारः बाह्येन्द्रियाग्राह्यवस्तुसाक्षात्कारो वा कार्यते। यथा गीतायां श्रीकृष्णार्जुन संवादे दिव्यम् ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् इत्यादिनार्जुनाय श्रीकृष्णेन तथाभूतचक्षुः प्रदानं विहितम् अद्य श्वः कलिकालसमयेऽपि परमयोगिराजैः श्री १०८ श्रीरामकृष्णस्वामिभिर्विवेकानन्दाय तथाभूत-शक्तिप्रदानं कृतम्, येन परमां चमत्कृतिमापन्नः स सर्वज्ञकल्पः संजातः तत्रैवमासीत एकदा विवेकानन्दः परमनास्तिक आङ्गलभाषाविद्वान् युक्तिप्रवीणोऽनीश्वरवादी वङ्गप्रदेशे आसीत। न तद्युक्तिसमुत्तरणे महामहो-

---

के प्रभाव से सिद्धयोगीराज के समक्ष क्रोध की निवृत्ति होने से योग को सिद्ध करने वाला मेरा सत्व यह जान लेना चाहिये।

इसके अनन्तर फिर उसी सत्व का विस्तार करता है, कि कैसा मेरा सत्व है। ह्रीमिति ह्रीं यह निषेध रहित व्रतस्वरूप है। यहां अप्रतिषेध व्रतस्वरूप ह्रस्व ह्रिंकार और दीर्घ ह्रींकार को ग्रहण करने से यह लघुकालिक और दीर्घकालिक है यह जान लेना चाहिए। दोनों ओर से उस प्रकार के व्रत के पालन करने से छोटी और बड़ी सिद्धि प्राप्त होती है। यहां ह्रस्व ह्रिंकार ग्रहण करने से यह ज्ञान होता है कि थोड़े समय उस प्रकार के व्रत करने से थोड़े समय तक स्थिर रहने वाली छोटे देश में रहने वाली सिद्धि प्राप्त होती है। अथवा ह्रस्व माने क्षुद्र सिद्धि प्राप्त होती है। जैसे कि किसी खोई हुई वस्तु का मिल जाना, और पुत्र धन आदि का बर मिल जाना आदि, इसी प्रकार दीर्घ ह्रींकार की ग्रहण से यह जाना जाता है कि बहुतसमय तक उस प्रकार के व्रत करने से बहुसमय वाली और अपरिमित देश में रहने वाली सिद्धि प्राप्त होती है। अथवा दीर्घ ह्रींकार से

पाध्यायप्रभृतयो महान्तो विद्वांसः समर्थाः समभवन् । स च कदाचिद्वि-
लासमात्रेण श्रीरामकृष्णस्वामिसन्निधे समगमत । उपविष्टश्च स तत्समक्षं
यदेव मनसि प्रष्टुं कल्पते तदेव समुत्तरितुमिवावगच्छति । अथ स
स्वामिनमीश्वरसाक्षात्कारमेव प्रार्थयामास । तदनन्तरमपरेद्युराहूतः स तेन
परमयोगिराजेन श्री रामकृष्णस्वामिना तल्ललाटे स्वाङ्गलिस्पर्शमात्रे-
णैव समुद्बोधितो विवेकानन्दः करामलकमिव प्रत्यक्षमेव सकलमपि
चराचरं परमात्मानं चापश्यदित्यलमत्र बहूक्तेन । आर्हतदर्शने च
स्वल्पदेशावस्थायिना, अपरिमितदेशावस्थायिनी चेयमेव सिद्धिः अवधि-
ज्ञानसमुद्भूताऽप्रतिपातिनी कारणवशाच्च प्रतिपाति–नीचोक्ता ।

दार्थ सिद्धि प्राप्त होती है । जैसे कि दूसरे को भी अभ्यास का अभाव
होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है । अथवा बाह्य इन्द्रियों से
ग्रहण न होने योग्य वस्तु का साक्षात्कार कराया जाता है । जैसे कि
गीता में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद में "मैं दिव्य नेत्र तुझको
देता हूं इससे तू मेरा ईश्वरी योग देख" इत्यादि से भगवान् श्री
कृष्ण ने अर्जुन के लिए उस प्रकार का दिव्य नेत्र दिया है । आजकल
कलिकाल के समय में भी योगीराज श्री मान् १०८ स्वामी रामकृष्ण
जी ने श्री विवेकानन्द जी के लिए उस प्रकार की शक्ति दी जिससे
उत्तम चमत्कार को प्राप्तकर वह सर्वज्ञ हुए । परमनास्तिक अंग्रेजी के
विद्वान् युक्ति में चतुर ईश्वर को न मानने वाले विवेकानन्द जी एक
समय बङ्गाल में थे । उनकी युक्ति को खण्डन करने में महामहो-
पाध्याय आदि बड़े विद्वान् भी समर्थ न हो सके । वह किसी दिन
विलासमात्र से श्री स्वामी रामकृष्ण जी के पास गये और बैठ गये ।
विवेकानन्द जी श्री स्वामी रामकृष्ण के सामने जो कोई प्रश्न पूछने को
मन में विचारते थे उसका उत्तर पहले ही उनको मिल जाता था ।
इसके अनन्तर विवेकानन्द जी ने स्वामी रामकृष्ण जी से ईश्वर के
साक्षात्कार की प्रार्थना की । इसके अनन्तर योगीराज स्वामी रामकृष्ण

नोट—अयं विवेकानन्दः स्मृत्याचारपुराणादिपरिपन्थिनः श्राद्धतीर्थप्रतिमापूजाविद्वेषिणोऽर्द्धनास्तिकाद्भिन्न एव । येन गीतोक्तिप्रवचनमात्रेणैव सहस्रशोऽमरीकानिवासिनः पाश्चात्या सनातनधर्मानुयायिनो विहिता इति नातितिरोहितंविदुषामिति।

योगमार्गानुसारिभिरन्यैश्च मतिश्रुत्यवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानवादिभिरवधिज्ञानगता एवमेव समर्थितेत्यलमत्र बहूक्तेन । ह्रीमित्यादौ ह्रस्वो विभक्तिलोपश्चवर्णबीजत्वात् छान्दसत्वात्' तत्समुदायमात्रस्य तदर्थवाचकत्वाद्वा न भवति ।

पुनः किंविशिष्टं ममसत्वमित्याह । वम् इति । वं बीजस्वरूपम् वमिति वरुणबोधकम् । ततश्च च वरुणस्वरूपं मम सत्वमित्यर्थः । एवं च शैत्यपावनत्वादिगुणविशिष्टस्य जलस्याधिपतिरिव सकलचराचर-

---

जी ने विवेकानन्द जी को दूसरे दिन बुलाया और उनके मस्तिक पर अपनी अंगुलि का स्पर्श किया, स्पर्शमात्र से ही विवेकानन्द जी उद्बोधित होगये, और सम्पूर्ण चराचर तथा ईश्वर को हाथ के खिलौने समान प्रत्यक्ष ही देखने लगे, इसमें इतना ही कथन काफी है । आर्हत दर्शन में स्वल्प देश में तथा अपरिमित देश में रहने वाली यह सिद्धि अवधि ज्ञान से उत्पन्न अप्रतिपातिनी और कारण वश से प्रतिपात्तिनी है

नोट—यह विवेकानन्द स्मृति आचार और पुराणों के विरुद्ध श्राद्ध तीर्थ और मूर्तिपूजा का द्वेषी अर्धनास्तिकों से भिन्न विचार वाला था । जिसने गीता के प्रवचनमात्र से ही हजारों अमरीका निवासियों के पाश्चात्य सनातन धर्म को मानने वाले बनाये । यह बात विद्वानों से छिपी हुई नहीं है ॥

योगमार्ग को मानने वाले और अन्य मति श्रुति अवधि मन पर्याय और केवल ज्ञान वादियों ने अवधिज्ञान गत हो इसका समर्थन किया है ।

वस्तुस्तोमं तथाभूतगुणविशिष्टं विदधन्मम सत्वं वर्तते । एतेन शैत्यपावने विधाने सत्वस्य सामर्थ्यातिशयो द्योत्यते ।

यद्वा थं विष्णुस्वरूपम् । ततश्च वेवेष्टीति विष्णुः । एवं च सर्वत्र व्याप्तं सकलेष्वपि पदार्थेषु अन्तःप्रविश्यापि मम सत्वं वर्तत इत्यर्थः. अथवा विष्णुवदाराध्यो भक्तिगम्यश्चेत्याशयः ।

यद्वा वमिति अमृतस्वरूपं मम सत्वम् । एतेन मृत्युनाशकत्वमवगम्यते । अयं भावः लौकिकानां पुत्रकलत्रादिप्रियाणां मृत्युनाशकत्वाद् दीर्घायुः प्रापकमिति । अथवा तदुपासनया तद्ध्यानाद्वा जीवो ह्यमृतीभवति । एतेन सायुज्यमोक्षसाधकं मम सत्वमित्वमगम्यते । तत्रैव जीवप्राप्तौ वास्तविकामृतीभावात् । अथवा । 'अपामलोममृता अभूम' इत्यादौ अमृतस्वरूपेण देवत्वमवगम्यते । ततश्च मम सत्वं देवस्वरूपमेवेत्यर्थः ।

हीम् इसमें ह्रस्व और विभक्तिलोप वर्णवीज और वैदिक होने से उस समुदायमात्र को तदर्थ वाचक होने से नहीं होता है ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि वं बीजस्वरूप युक्त। वं यह वरुण का बोधक है। तो यह अर्थ हुआ कि वरुण का बोधक मेरासत्व है । इस प्रकार शीत पवित्र आदि गुणयुक्त वरुण के समान संपूर्ण चराचर वस्तुसमूह को उसप्रकार के गुणों से युक्त करने वाला मेरा सत्व है । इससे शैत्य और पवित्र करने में सत्वका सामर्थ्य प्रकट होता है । अथवा वं विष्णुस्वरूप है । जो प्रवेश करता है उसको विष्णु कहते हैं । इस प्रकार सब जगह व्याप्त संपूर्ण पदार्थों में प्रवेश कर मेरा सत्व ही विद्यमान है । अथवा विष्णु के समान आराध्य भक्ति से प्राप्त होने वाला मेरा सत्व है ।

अथवा वं माने अमृत स्वरूप मेरा सत्व है । इससे मृत्यु को नाश करने वाला जानाजाता है । भाव यह है कि लौकिक पुत्र स्त्री आदि प्रिय जनों की मृत्यु को नाश करने से दीर्घायु को देने वाला है । अथवा

मदुपासनया मत्सत्वप्राप्तौ देवत्वप्राप्तिः स्वत एव प्रतीयते । एतेन मीमांसकानां मतमुन्नीतं भवति ।

यद्वा वमिति अपराजितस्वरूपम् । ततश्च न पराजितमित्यपराजितम् । मम सत्वं न केनाप्यत्रस्कन्दितुं योग्यमिति तदाशयः । एतेन महासत्वं मम सत्वमित्यर्थः । अथवा अपराजिता विद्येव अपराजितं मम सत्वम् । एवं च युद्धादिषु कार्येषु विजयप्रापकमिति तात्पर्यार्थः ।

यद्वा वमिति इन्दुस्वरूपम् । एवं च चन्द्रवत्सकलजनानामाह्लादजनकं मम सत्वमित्यर्थः । अथवा ममोपासनया आह्लादजनकता शक्तिः पुरुषेषूपपद्यत इति । यद्वा वमिति ककुत्स्वरूपं मम सत्वम् । सर्वश्रेष्ठमित्यर्थः । तदुपासनया च सर्वश्रेष्ठो ममोपासको लोकेषु संज्ञायते ।

उसकी उपासना सेवा ध्यान से जीव अमृत हो जाता है। इससे सायुज्यमोक्षको सिद्ध करने वाला मेरा सत्व है यह सिद्ध हुआ। वही जीव की प्राप्ति में वास्तविक अमृत का अभाव होने से अथवा अपाम-सोम इत्यादि में अमृत स्वरूप से देवत्व माना गया है। तो मेरा सत्व देवरूप है। मेरी उपासना से मेरे सत्व को प्राप्ति होने पर देव-की प्राप्ति स्वयं सिद्ध है। इससे मीमांसको का मत भी स्वीकृत हो जाता है।

अथवा वं यह अपराजित स्वरूप है। तो जो पराजित नहीं हैं उसको अपराजित कहते हैं। भाव यह है कि मेरे सत्व का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता है। इससे महासत्व मेरा सत्व है यह अर्थ हुआ अथवा अपराजिता विद्या के समान मेरा सत्व अपराजित है। इस प्रकार युद्धादि कार्यों में विजय प्राप्त करने वाला मेरा सत्व है।

अथवा वं यह चन्द्र स्वरूप है। इस प्रकार चन्द्रमा के समान सबको प्रसन्न करने वाला मेरा सत्व है। अथवा मेरी उपासना से

यद्वा वमिति करुणम्। कारुण्ययुक्तं मम सत्वमित्यर्थः। तेनैव सर्वलोकस्योद्धाराय सर्वदा यतते।

यद्वा वमिति वेदसंज्ञकम्। एतेन ज्ञानमयं ज्ञानप्रापकं वा मम सत्वमस्तीत्यर्थं; । अथ पुनस्तमेव विशिनष्टि। पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह—

लमिति। लमिति बीजं पृथ्वीस्वरूपम्। एतेन सर्वसहत्वं सकल- दुष्टेषु क्षमाकारकत्वं मम सत्वस्यास्तीति भावः।

यद्वा लमिति विमलबीजम्। एतेन सर्वदोषराहित्यं मम सत्वेऽ स्तीति गम्यते एवं च सर्वतो निर्मलं मम सत्वम्। न खलु तत्र रजस्तमोमलानां संसर्गोऽ प्यस्तीति तदाशयः।

यद्वा लमिति वेदार्थसारः। वेदानामर्थस्य सारभूतं मम सत्वम् एतेन ओम् स्वरूपं वा यज्ञस्वरूपं वा मम सत्वमस्तीति भावः।

आह्लादजनकता शक्ति पुरुषों में उत्पन्न होती है। अथवा वं यह ककुद स्परूप मेरा सत्व है। अर्थात् सर्व श्रेष्ठ है। उसकी उपासना से लोक में सर्व श्रेष्ठ मेरा उपासक होता है।

अथवा वं यह करुण स्वरूप है। करुणा से युक्त मेरा सत्व है। उससे सब लोक के उद्धार के सदा यत्न करता है।

अथवा वं यह बेद संज्ञक हैं। इससे ज्ञानमय और ज्ञान को देने वाला मेरा सत्व है। फिर उसीको बताता है कि कैसा मेरा सत्व है कि लमिति लं यह बीज पृथ्वी रूप है। इससे सब सहन करने वाला सब दुष्टों पर क्षमा करने वाला मेरा सत्व है।

अथवा लं यह विमल बीज है। इससे सब दोषों से रहित मेरा सत्व है। इस प्रकार निर्मल मेरा सत्व है। भाव यह है कि उसमें रजो- गुण और तमोगुण से उत्पन्न होने वाले दोषों का संबन्ध नहीं है।

यद्वा त्वमिति अमोघम् । अवश्यफलप्रापकम् । ममोपासना कदाचिदपि न निष्फला भवतीत्यर्थः ।

यद्वा त्वमिति ऋद्धिस्वरूपम् । सर्वविधसमृद्धिप्रापकम् । एतेन लौकिकपुत्रपौत्रधनधान्यादिसर्वविधऋद्धिप्रापक मम सत्वमस्तीति प्रतीयते ।

यद्वा त्वमिति इन्द्रः । इदिपरमैश्वर्ये । इन्दनात् इन्द्रः । परमैश्वर्यवत् मम सत्वमित्यर्थः अथवा इन्द्रपदस्य देवाधिपतेरिन्द्रस्य वाचकत्वादभेदसंसर्गेण सत्वेन सह बाधात् इन्द्रपदस्य इन्द्रसदृशे लक्षणा । ततश्चायमर्थः । इन्द्रसदृशं मम सत्वम् । सादृश्यं च अधिपतित्वेनैव, तत एतदायातम् । देवाधिपत्यमिव सकलचराचरेषु मम सत्वस्याधिपत्यमस्तीति ।

यद्वा त्वमिति कन्दबीजम् । ततश्च सकलचराचरस्य मूलभूतं मम सत्वमित्यर्थः । एतेन सर्वमूलाधारकत्वं सत्वस्य व्यज्यते ।

अथवा त्वं यह वेद के अर्थ का तत्व है । वेदों के अर्थ का सार-भूत मेरा सत्व है । इससे ॐ स्वरूप वा ब्रह्मस्वरूप मेरा सत्व है । अथवा त्वं यह अमोघ स्वरूप है । फल को अवश्य देने वाला है । मेरी उपासना कभी निष्फल नहीं हो सकती है यह अर्थ हुआ ।

अथवा त्वं यह ऋधि स्वरूप है । सब प्रकार से समृद्धि को देने वाला है । इससे लौकिक पुत्र पौत्र धन और धान्य आदि सर्व प्रकर की ऋद्धि को देने वाला मेरा सत्व है ।

अथवा त्वं यह इन्द्र का वाचक है । इदि परमैश्वर्ये धातु से इन्दनात् इस व्युत्पत्ति से इन्द्र हुआ । अर्थात् परम ऐश्वर्य वाला मेरा सत्व है । अथवा इन्द्रपद देवताओं के राजा इन्द्र अर्थ में विद्यमान है, अभेद सम्बन्ध से सत्वके साथ बाध होने से इन्द्रपदकी इन्द्रसादृश्य में लक्षणा की. तो यह अर्थ हुआ कि इन्द्र के समान मेरा सत्व है । समा-

पुनः कथं भूतं मम सत्वमस्तीति विशिनष्टि।

यमिति यं बीजस्वरूपम् । यमिति वायुः । वातीति वायुः । सर्वत्र गतिमत् । वायुबदप्रतिहतगतियुक्तम् ।

यद्वा यमिति काली । कालीव दुष्टानां विनाशने विकरालस्वरूपं । एतेन दुष्टानां नाशकत्वं शिष्टानां पालकत्वं च मम सत्वस्यास्तीति भावः ।

यद्वा यमिति पुरुषोत्तमस्वरूपम् । पुरुषात् उत्तमं पुरुषोत्तमम् न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष.' इति प्रकृतिविकृतिभिन्नात्कूटस्थाज्जीवादति उत्तम मम सत्वम् । एतेन ब्रह्मस्वरूपत्वमस्येत्यवगम्यते ।

यद्वा यमिति युगान्तशासनस्वरूपम् । युगान्तस्य शासनं शासनभूतम् युगानामन्तकर्त्रकमित्यर्थः । अथवा युगान्ते खण्डप्रलये महाप्रलये वा शासनमस्येति युगान्तशासनं । महाप्रलयेपि प्रधानभूतमेवेत्यर्थः ।

नता अधिपति संबन्ध से है। तो यह अर्थ आजाता है कि देवताओं के अधिपति के समान संपूर्ण चराचरों में मेरे सत्त्व का आधिपत्य है।

अथवा लं यह कन्द बीज है। तो संपूर्ण चराचर का मूल कारण मेरा सत्व है, यह अर्थ हुआ। इससे सर्वमूलाधार सत्व को सिद्ध हुआ।

फिर कैसा मेरा सत्व है इस बात को बतलाता है कि यं बीज स्वरूप यं वायु को कहते हैं। वातीति व्युत्पत्ति से वायु सिद्ध होता है। सर्वत्र गति वाला वायु है। इस प्रकार वायु के समान अप्रतिहत गति वाला मेरा सत्व है।

अथवा यं काली को कहते हैं। काली के समान दुष्टों के नाश करने में विकराल स्वरूप है। इससे दुष्टों का नाश करने वाला और सज्जनों का पालन करने वाला मेरा सत्व है यह अर्थ हुआ। अथवा

यद्वा यमिति वीरेशः। वीराणामपि ईशः। महावीरस्वरूपमित्यर्थः।

यद्वा यमिति व्याप्तम्। सर्वेष्वपि पदार्थेषु ममसत्वम् विद्यमानम्। व्यापकम् च। प्रत्यवयवंविद्यमान च। व्याप्तम् व्यापकं चेत्यर्थः। एतेन मम सत्वमन्यानपि तथैव व्यापयतीत्याशयः। ममोपासनया सर्वेषु प्रतिष्ठितो भवति पारलौकिकफलाभिलाषुकस्तु ब्रह्मस्वरूपतां तादृप्य सारूप्य मुक्ति गच्छतीति भावः।

पुनः कीदृशं मम सत्वमस्तीत्याह।

समिति सं वीजस्वरूपं समिति हंसः जीवस्वरूपमित्यर्थः। व्याख्यात-मेतदिति पुनरुपादानं द्विर्वद्धं सुवद्धं भवतीति न्यायात् मत्स्वरूपया एव जीवा इति वोधयितुं न विरुध्यते। उक्तं हि सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् सामुद्रो हि तरंगः क्वचन न तारंगः इति।

यं यह पुरुषोत्तम स्वरूप है। पुरुष से जो उत्तम उसको पुरुषोत्तम कहते हैं। पुरुष प्रकृति और विकृति से भिन्न है, इससे प्रकृति विकृति से भिन्न कूटस्थ जीव से भी उत्तम मेरा सत्व है। इससे ब्रह्म स्वरूप इसको जाना गया अथवा यं यह युगान्त शासन स्वरूप है। युगान्त का जो शासन भूत उसको युगांत शासन कहते हैं। अर्थात् युगों का अन्त करने वाला सत्त्व है। अथवा युगान्त में माने खण्ड प्रलय में वा महाप्रलय में है शासन जिसका उसको युगांत कहते हैं। महा प्रलय में भी प्रधान भूत है यह अर्थ हुआ। अथवा यं का अर्थ है वीरेश। वीरों का भी स्वामी। अर्थात् महावीर स्वरूप है।

अथवा यं का अर्थ है व्याप्त। सब पदार्थों में मेरा सत्व विद्यमान है, और प्रत्येक अवयव में विद्यमान है। अर्थात् व्याप्त माने व्यापक है। इससे मेरा सत्व औरों को भी उसी प्रकार व्याप्त करता है यह भाव हुआ। मेरी उपासना से सब पुरुषों में प्रतिष्ठित होता है। पर

यद्वा समिति जगजङ्घीम् ततश्च जगतो बीजस्वरूपं मम सत्वमस्तीत्यर्थः। यथा बीजाद् वृक्षादयो जायन्ते एवमेव मम सत्वात्सकलचराचरभूतमिदं जगदुत्पद्यते। एतेन ब्रह्मस्वरूपत्वं प्रकृतिस्वरूपत्वं वा मम सत्वस्यास्तीति व्यज्यते। अथवा जगतो बीजं ममस्वरूपं मम सत्वमस्तीत्यर्थः कर्मण एव जगद् पद्यते। पुनः पुनर्जायमानस्य चराचरस्वरूपस्य जगतः कर्मैव बीजम्। अथवा जगतो बीजं परमाणुस्वरूपं मम सत्वमित्यर्थः। महाप्रलयानन्तरं परमाणुभ्यो जगदुपद्यते इति वैशेषिकसिद्धान्तविदः। अथवा जगतो बीजम्, बीजमिव बीजस्वरूपं मम सत्वमिति लौकायतिकादीनामपि सिद्धान्तानुकूलमुन्नेयम्।

यद्वा समिति सोऽहं जीवब्रह्मस्वरूपं। एतेन जीवब्रह्मणोरभेदत्वप्रापकं मम सत्वमस्तीति तात्पर्यार्थः। अथवा सोहमिति ज्ञानस्वरूपं मम सत्वमस्तीत्यर्थः।

लौकिक फल की इच्छा वाला तो ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त होकर मुक्त होजाता है।

फिर कैसा मेरा सत्व है इसको बताता है कि 'सं' सं बीजस्वरूप है। सं हंस को कहते हैं, अर्थात् जीव स्वरूप है। इसका व्याख्यान पूर्व कर दिया है फिर व्याख्यान द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति इस न्याय से मेरे स्वरूप ही जीव हैं इसको बताने के लिए विरुद्ध नहीं है। कहा भी है सत्यपि भेदापगमे—इत्यादि, हे नाथ! जीव ब्रह्म अभेद होने पर भी मैं आपका हूँ किंतु आप मेरे नहीं हैं। जैसे कि समुद्र की तरङ्ग हैं होती किंतु तरंगो का समुद्र नहीं होता है।

अथवा सं यह जगद्बीज स्वरूप है। तो जगत् का बीज स्वरूप मेरासत्व है यह अर्थ हुआ। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है इसी प्रकार मेरे सत्व से संपूर्ण चराचरभूत यह संसार उत्पन्न है। इससे ब्रह्मस्वरूप वा प्रकृति स्वरूप मेरे सत्व को स्पष्ट है। अथवा संसार

यद्वा समिति परमात्मनो बोधकम् । ततश्च परमात्मस्वरूपं मम सत्वम् । सर्वज्ञं जगतः कर्तृस्वरूपमित्यर्थः । अथवा परमः उत्कृष्टस्तथाविधज्ञानयुक्तत्वात आत्मा यस्येति परमात्मा । कपिलबौद्धार्हदादिस्वरूपमित्यर्थः । अथवा परा मा लक्ष्मीर्यस्मिन्निति परमः । अत्यन्तलक्ष्मीसम्पन्नः स आत्मायस्येति परमात्मा । औपचारिकः पुरुषे आत्मशब्दप्रयोगः यथा धनिकोऽहम् गौरोऽहम् स्थूलोऽहमित्यादौ ।

यद्वा समिति ईश्वरः । ततश्च ईश्वरस्वरूपं मम सत्वं । ईष्टे इतीश्वरः अणिमा महिमाचैव गरिमा लघिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः इति अणिमादि सिद्धियुक्तम्. अणिमादिसिद्धिप्रापकं च मम सत्वमित्यर्थः । अथवा क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वर इति सांख्याः । लोकप्रसिद्धो राजा ईश्वर इति लौकायतिकाः । ईश्वरः शम्भुरिति पाशुपताः । ईश्वर परब्रह्मेति शकराः ।

का बीज कर्मरूप मेरा सत्व हैं। कर्मसे ही जगत् उत्पन्न है। बारबार उत्पन्न चराचर रूप जगत् का कर्म ही बीज हैं। अथवा संसार का बीज परमाणु स्वरूप मेरा सत्व है। महाप्रलय के अन्तर परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति है. यह वैशेषिक सिद्धान्त है। अथवा संसार के बीज के समान बीजस्वरूप मेरा सत्व है, यह लौकायति वादियों का सिद्धान्त भी संगत होजाता है।

अथया सं यह सोऽहं जीवब्रह्मस्वरूप है। इससे जीव ब्रह्म के अभेद का प्रापक मेरा सत्व है यह तात्पर्य हुआ। अथवा सोऽहं यह मन्त्र स्वरूप है। अथवा सोऽहं यह ज्ञानस्वरूप मेरा सत्व है।

अथवा सं यह परमात्मा का बोधक है। तो परमात्मास्वरूप मेरा सत्व है, यह अर्थ हुआ। अर्थात् सर्वज्ञ और संसार का कर्तृस्वरूप मेरा सत्व है। अथवा उस प्रकार के उत्तम ज्ञान से युक्त है आत्मा जिसकी उसको परमात्मा कहते हैं। कपिल बौद्ध आर्हत आदि

एवमन्येऽपि ये ये ईश्वरपदेन स्वस्वोपास्यदेवतां वर्णयन्तीति तत्तन्मत-मुन्नेयम् ।

पुनस्तमेव विशिनष्टि कीदृशं मम सत्वमित्याह, तं तमिति बीजस्वरूपम् । ततश्च तमिति हरिः हरिस्वरूपमित्यर्थः । अथवा तमिति कामी । कामयुक्तं लौकिकपुत्रपौत्रधनाद्यभिलाषायुक्तानामभिलाषापूरकमित्यर्थः । अभिला-षापूरकत्वात्तद्युक्तत्वमौपचारिकमवगन्तव्यम् । मदुपासनया सर्वविधाभिला-षाणां पूर्तिर्भवतीति भावः ।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह, सं समिति बीजस्वरूपम् । समिति अमर्त्यकृत् । अमर्त्यकृत्वे समिति बीजमवगन्तव्यम् । ततोऽयमर्थः । मरण-धर्मनिवर्तकं मोक्षप्रापकं मम सत्वमित्यर्थः ।

यद्वा समिति अमृताक्षम् । अमृतानि अक्षाणि इन्द्रियाणि यस्मिन्निति अमृताक्षम् । अपहृतेन्द्रियकारकं एतेन सर्वं ज्ञानमयत्वं सर्वद्रष्टृज्ञान-प्रापत्वं च मम सत्वस्य बोधितं भवति ।

स्वरूप यह अर्थ हुआ । अथवा परा मा लक्ष्मी है जिसमें उसको परम कहते हैं, अत्यन्त लक्ष्मी संपन्न, यह है आत्मा जिसकी उसको परमात्मा कहते हैं । पुरुषों में आत्माशब्द का प्रयोग औपचारिक है । जैसे कि मैं धनिक हूँ, मैं गौर हूँ, मैं स्थूल हूँ इत्यादि ।

अथवा सं ईश्वर का वाचक है, तो ईश्वर स्वरूप मेरा सत्व है । ईष्टे इस व्युत्पत्ति से ईश्वर हुआ । अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, इन आठ सिद्धियों से युक्त, तथा इनको देनेवाला मेरा सत्व हैं । अथवा क्लेशयुक्त कर्मों के विपाक से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है यह सांख्य मत है । लोक में प्रसिद्धराजा ईश्वर है, यह लौकायतिक मानते है । शम्भु ईश्वर है यह पाशुपत मत हैं । ईश्वर परब्रह्म है यह शंकर मत है । इसी प्रकार और भी जो जो ईश्वर पद से अपने अपने उपास्य देवता का वर्णन करते हैं, उन उनका मत भी जानलेना चाहिए ।

यद्वा समिति इन्द्रः परमेश्वर्ययुक्तम्। पूर्वमुपात्तस्य विशेषणद्वारेण समिति बीजस्य पुनरुपादानं ज्ञानमयत्व परमैश्वरयुक्तत्वादि गुणानां विशेषतया प्राचुर्यबोधनार्थमिति।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह। वं वमिति बीजस्वरूपम्। तथा तं तमिति बीजस्वरूपम्। एतद् द्वयमपि पूर्वं व्याख्यातम्।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह। हमिति अहमर्थे। हि इति निश्चये। हि इति निश्चयेन अहमेव मत्सत्वम्। अथवा हमित्यहंकार-स्वरूपम्। अहंत्वाभिमानयुक्तजीवस्वरूपमित्यर्थः।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह। यं यमिति बीजस्वरूपम्। तथा वं वमिति बीजस्वरूपम्। इदमपि पूर्वं व्याख्यातमेव। अत्र पूर्वमुपात्तस्य वमिति बीजस्य त्रिवारमुपादनम्। तत्रायं भावार्थः। पूर्वं प्रथमचरणे विशेषणतया गृहीतानामन्तःस्थानां वं तं यमिति बीजानां

फिर उसी को विस्तृत करता है कि कैसा मेरा सत्व है कि 'तं' तं बीज स्वरूप। तं हरि का वाचक है। अर्थात् हरिस्वरूप। अथवा तं का अर्थ कामी है। कामयुक्त लौकिक पुत्र पौत्र धन आदि की अभि-लाषायुक्त मनुष्यों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। अभिलाषाओं को पूर्ण करने से उससे युक्त है यह औपचारिक जान लेना चाहिए। मेरी उपासना से सर्व प्रकार की अभिलाषाओं की पूर्ति होती है यह भाव हुआ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि 'सं' सं बीज स्वरूप। सं का अर्थ है मृत्यु को न करने वाला। तो यह अर्थ हुआ कि मरणधर्म से छुड़ाने वाला और मोक्ष को देने वाला मेरा सत्व है। अथवा सं का अर्थ है अक्षुताक्ष। अक्षुत हैं अक्षमाने इन्द्रियां जिसमें उसको अक्षुताक्ष कहते हैं। इन्द्रियों को नाशकरने वाला यह भाव हुआ। इससे सर्वज्ञानमय सर्वप्रष्टा ज्ञानप्रापक केवल ज्ञान का कर्ता मेरा सत्व है।

मध्ये आदिभूतस्य सत्वगुणाधिष्ठायकस्य विष्णुबोधकस्य वमित्यस्योपादानम् । तेनेदं परिज्ञातं भवति । सर्वतः प्रथमं सत्वस्यैव ग्रहणं कर्तव्यम् । संसारमुमुक्षूणां परिग्रहयुक्तानां विष्णुरेवोपास्यः । अनन्तरं च सर्वथा विरक्तानां निष्परिग्रहाणां गृहीतसंन्यासाश्रमाणां शुद्धास्वरूपं ब्रह्मैवोपास्यम् । एवं द्वितीयचरणे अन्तःस्थयोर्वलमिति बीजयोयोर्द्वं विशेषणद्वाराग्रहणम् । ततश्च द्वितीयाश्रमे लमिति पृथिव्यादिबोधकस्य, वमिति सत्वप्रधानस्य विष्णोश्च बोधकस्य बीजस्य ग्रहणं भवति । तेनेदमायातम् । लोके गृहस्थाश्रमिणो भौतिकेष्वेव पृथिव्यादिपदार्थेषु लीना भवन्तीति स्वरूपमात्रप्रदर्शनपरम् । वस्तुतः उपासनायां सर्वेषामप्यहमेवोपास्यो भवामीत्यसकृदावेदितमेव ।

अथवा सं परम ऐश्वर्य युक्त इन्द्र को कहते है । पूर्व कथित विशेषण द्वारा सं बीज का फिर कथन ज्ञानमय परमैश्वर्य आदि से युक्त गुणों का विशेषतया अतिशय बोधन के लिए किया गया है ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि वं बीजस्वरूप, तथा लंबीजस्वरूप है । इन द्वानों का पूर्व व्याख्यान करदिया है ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि हंस्वरूप, हं का मैं अर्थ है । हि का निश्चय अर्थ है । इस लिए मैं ही मेरा सत्व है । अथवा हं यह अहंकार स्वरूप है । अहंत्व अभिमान से युक्त जीव स्वरूप है यह अर्थ हुआ ।

फिर कैसा मेरा सत्व है कि यं बीजस्वरूप उसीप्रकार वं बीजस्वरूप इसका व्याख्यान भी पहले कर दिया है । यहां पूर्व कहे हुए वं इस बीज का तीनवार कथन किया गया है । इसका अभिप्राय यह है कि पहले प्रथमचरण में विशेषणता से ग्रहण किए हुए अन्तस्थ संज्ञा वाले वं लं यं बीजों के मध्य में आदिका सत्वगुण से युक्त विष्णु का बोधक वं बीजका उपादान किया । उससे यह ज्ञान होता है कि सबसे प्रथम

वेवेष्टीति विष्णुरिति सर्वेष्वपि देवेषु ममैव सत्वात् । द्वितीयाश्रमे संसारसुखनिमग्नानामप्यहमुपास्य एवेत्यर्थः । एवमन्तिमपदे 'यं वमिति' बीजयोरन्तस्थवर्णयोर्ग्रहणम् । तत्र च शत्रुनाशकस्य कालीस्वरूपबोधकस्य यमित्यस्य पूर्वमुपादानम् । ततश्चेदमायातम् । कामक्रोधादिस्वरूपं शत्रुकुलं विनाश्य तदनन्तरं वमिति सत्वस्वरूपस्य निराकारस्य ब्रह्मण उपासनं कर्तव्यम् । अत्र त्रिःकृत्वा वमित्यस्य ग्रहणम् । ततश्चेदमवगतं भवति । आदौ मध्ये अन्ते च, प्रातर्मध्याह्ने सायंकाले च सत्वप्रधानस्य ब्रह्मण एव उपासना कर्तव्येति फलितोऽर्थः ।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह । वायम् । वातीति वायम् । वा गतिगन्धनयोरिति वा श्याद्व्यधास्रु०/३/१/१४१ इत्यादिना णः प्रत्ययः।

सत्वका ही ग्रहण करना चाहिए। संसार में मोक्षकी इच्छा वाले परिग्रहयुक्त नाममात्र के विरक्तवालों को विष्णु की ही उपासना करनी चाहिए। इसके अनन्तर सर्वप्रकार से विरक्त परिग्रह रहित संन्यास को धारण करने वालों को शुद्धसत्व स्वरूप ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिए। इसप्रकार दूसरे चरणों में अन्तस्थान संज्ञावाले वं लं इनदोनों बीजों का विशेषण द्वारा ग्रहण है। तो दूसरे आश्रम में लं इस पृथ्वी आदि के बोधक और वं इस सत्व प्रधान विष्णुके बोधक बीज का ग्रहण होता है। उससे यह आजाता है कि लोक में गृहस्थाश्रम में रहने वाले भौतिक पृथिव्यादिपदार्थों में ही लीन रहते हैं, यह स्वरूपमात्र का दर्शन है। वास्तविक में उपासनामें सबको मेरी ही उपासना करनी चाहिए, यह मैंने कई वार कहदिया है।

वेवेष्टि इस व्युत्पत्ति से विष्णु सिद्ध होता है। सब देवताओंमें मेरा ही सत्व है। दूसरे गृहस्थाश्रममें संसार के सुखों में मग्न गृहस्थी भी मेरी ही उपासना करें। इसी प्रकार चतुर्थ पाद में यं वं इन अन्तस्थ संज्ञा

'आतो युक् चिण् कृतो' रिति युगागमे वायम् । सर्वत्र गतिमत् अथवा गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्भयोरिति विश्वः । ततश्च वायम् सर्वत्र चराचरात्मके जगति सम्बन्धयुक्तम् '। अथवा वायम् आमोदयुक्तम् । उपासनाध्यानाभ्यां वा आमोदकारकमित्यर्थः । अथवा वेञ् तन्तुसन्ताने । वयति जीवद्वारा कर्मतन्तूनिति वायम् । जीवद्वारा कर्मकारकत्वात्सकलजगतः कर्मणि प्रवर्तकम् । यद्वा वयति कर्मद्वारा संसारमिति वायम् । कर्मद्वारा पुनः पुनः संसारप्रवर्तकत्वात्कर्मानुकूल-चराचरोत्पादकमिति मीमांसकमतमुन्नीतं भवति । ननु मीमांसकनये संसारोत्पादकस्य कर्तुरभावात्कथं तन्नये इदं संगच्छते इति चेच्छृणु । कर्मणोऽचेतनत्वेन यददृष्टबलात्कर्मानुकूलं गोमनुष्यादिस्वरूपं जग-

---

वाले बीजों का ग्रहण किया है । उसमें शत्रुनाशकरने वाले काली के स्वरूप का बोधक यं बीज का कथन पहले करदिया है । तो यह आ-जाता है कि कामक्रोधादि स्वरूप शत्रु के कुलका नाशकरके पश्चात् वं इस सत्वस्वरूप निराकार ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए । इसमें तीन वार वं का ग्रहण किया है, आदि में, मध्यमें और अन्त में । तो इससे यह ज्ञान होता है कि प्रातःकाल मध्याह्न काल और सायंकाल तीनों समय सत्वप्रधान ब्रह्मकी ही उपासना करनी चाहिये, यह फलि-तार्थ हुआ । फिर कैसा मेरा सत्व है कि 'वायम्' । वाति इस विग्रह से वा गतिगन्धनयो धातु से 'वाश्याद्यग्रधास्त्रु०' /३/१/१४१/ इत्यादि सूत्रसे ण प्रत्य यहोता है । 'आतोयुक्चिण्कृतो, इस सूत्रसे युक् का आगम होने पर वायम् सिद्ध होता है, अर्थात् सर्वत्रगति वाला । वा का गन्ध गन्धक आमोद लेश सम्बन्ध और गर्भ अर्थ है, यह विश्वकोष में लिखा है । तो सम्पूर्ण चराचर संसार में संबन्ध से युक्त वायम् का अर्थ हुआ अथवा वायं का अर्थ प्रसन्नता से युक्त है । भाव यह है कि उपासना ध्यानसे प्रसन्न करने वाला है ।

दुत्पद्यते तत्स्वरूपमेव मे सत्वमित्यर्थः। अथवा वयति मर्करीकीटक-वत्संसारमिति वायम् 'एको ऽहं बहु स्याम्' इति मर्करीकीटकवत्संसारमुत्पादयन्स्वस्मिन्नेव निलीयते. तन्तुसंतानमिव जगत्संतानयतीत्यौपचारिकं तन्तुसंतानकल्पनम्। यथा मर्करीकीटस्तन्तुसंतानं विधाय स्वस्मिन्नेवनिलीयते तथैव मत्सत्वस्वरूपं ब्रह्म अपि जगदुत्पाद्य स्वस्मिन्नेव निलीयत इति भावः।

पुनः कीदृशं मम सत्वमित्याह। कम् कमिति वीजस्वरूपम्। कमिति वासुदेवः। कृष्णाद्यवतारस्वरूपमित्यर्थः।

यद्वा कमिति अनन्तम्। नास्ति अन्तो यस्येति अनन्तम्।

अथा वेञ् तन्तुसन्तनो धातु से, वयति इसव्युत्पत्ति से जीवद्वारा कर्मसूत्रों का जो संतान करना है उसको वायम् कहते हैं। जीवद्वारा कर्म को कराने से संपूर्ण संसार को कर्म में प्रवृत्त करता है। अथवा कर्मद्वारा जो संसार का बपन करता है उसको वायम् कहते हैं। कर्म के द्वारा बार बार संसार का प्रवर्तक होने से कर्मों के अनुकूल चराचर को उत्पन्न करने वाला है, यह मीमांसकों का मत भी संगत होजाता है। मीमांसके मत में संसार को उत्पन्न करने वाले कर्ता का अभाव है तो कैसे उसके मतमें यह सिद्धान्त संगत हो सकता है, यह शंका हो तो सुनिए। कर्म के अचेतन होने से प्रारब्ध के बलसे कर्मके अनुकूल गो मनुष्य आदि स्वरूप संसार उत्पन्न होता है।

उसका स्वरूप ही मेरा सत्व है यह अर्थ हुआ। अथवा मकड़ी कीड़े के समान जो संसार को बनाता हैं उसको वायम् कहते हैं। एक मैं बहुत होऊँ. इससे मकड़ी के समान संसार को उत्पन्न करता हुआ अपने में ही लीन करदेता है। सूत्रों के संतान के समान संसार का संतान करता हैं, यह तन्तु सन्तान की कल्पना औपचारिक है। जैसे मकड़ी अपनी जाली को बनाकर फिर अपने अन्दरही खींचलेती है,

सर्वदा विद्यमानं नाशरहितं मत्सत्त्वमित्यर्थः ।

यद्वा कमिति कामरूपम् । कामेन रूपमस्येति कामरूपम् । स्वेच्छाधीनशरीरम् । यदुपासनया भक्ताः, अहं च स्वेच्छाधीन-शरीरा जयामहे । यथा रामप्रदत्तसिद्धिवता हनुमता अशोकवाटिकायां सीतासाक्षात्कारसमये लङ्कायां प्रवेशसमये, अहिरावणस्य पूजामण्डपे रामलक्ष्मणयोर्बलिसमये मशकरूपेण पुष्पद्वारा प्रवेशोऽकारि । तथा तेनैव सुरसाकृतपरीक्षणसमये अशोकवाटिकाध्वंसने, अक्षयकुमारादीनां संग्रामे लङ्कादाहे, संजीवनौषधानयनाय द्रुहिणाचलभागानयने महाशरी-रमकारीति नातितिरोहितं विदुषाम् । एवं लघुत्वगुरुत्वादिसिद्धीनामुदाहर-णानि पुराणादिषूक्तानि विस्तरभयान्नोच्यन्ते । स्वयमेवोह्यानि ।

उसी प्रकार मेरा सत्वस्वरूपब्रह्म भी संसार को उत्पन्न कर अपने में ही लीन करदेता है यह अभिप्राय हुआ ।

फिर कैसा मेरासत्व है कि कं बीजस्वरूप । कं वासुदेव को कहते हैं वासुदेवावतार स्वरूप मेरा सत्व है । अथवा कं अनन्त को कहते हैं । जिसका अन्त नहीं उसको अनन्त कहते हैं । तो नाश से रहित सदा-विद्यमान मेरा सत्व है ।

अथवा कं वह कामरूप है । कामसे रूप है इसका, इसलिए इसको कामरूप कहते हैं । अर्थात् अपनी इच्छा के अनुकूल शरीर । जिसकी उपासना से भक्त और मैं अपनी इच्छा के अनुसार शरीरप्राप्त करसकते हैं । जैसे रामचन्द्रजी से दी हुई सिद्धि से हनुमान ने अशोकवाटिका में श्री सीतामाता को मिलने के समय में, लङ्का में प्रवेश करने के समय पर अहिरावण के पूजामण्डप में और श्रीराम लक्ष्मणके बलि , समयमें मशक रूपसे पुष्पके द्वारा प्रवेश किया है । इसी प्रकार उसी हनुमानने सुरसा के परीक्षा के समयमें अशोक वाटिका को नाशकरने में अक्षय कुमारादि कों के संग्राम में लङ्का को जलाने में संजीवन औषध लानेके

यद्वा कमिति कामगम्। कामेषु पुरुषाणां मनोरथेषु गच्छतीति कामगम्। पुरुषाणां मनोरथपूरणायानुगतम्। उक्तं च "यं यं चिन्तयते कामं तं तमाप्नोति निश्चितम्।

यद्वा कमिति कामस्वरूपम्, अथवा कामदेवस्वरूपम्। कामानुकूलवशीकरणादिसाधकं मत्सत्वमित्यर्थः।

यद्वा कमिति कालाग्निः। सकलसंसारसंहारकारकत्वात्प्रलयानलस्वारूपं मत्सत्वमित्यर्थः। यद्वा कमिति गणनाथः। तत्तद्गणानां भूतप्रेतदेवमनुष्यपशुपच्यादिसमुदायानां नायकम्। तेषां तेषां गणानां स्वरूपम्। अथवा तेषु तेषु गणेषु प्रधानतया वर्त्तमानम्।

यद्वा कमिति विधाता। विधातृस्वरूपम्। सकलसंसारस्य

लिए द्रोहिणाचलपर्वत के भाग को लाने में बड़ाशरीर बनाया यह बात विद्वानों से छिपी हुई नहीं है। इसी प्रकार लघुत्व गुरुत्व आदि सिद्धियों के उदाहरण पुराणों में कहे हुए हैं। अतः यहां विस्तार के भय से नहीं कहेगये हैं, यह विद्वान् लोग स्वयं ज्ञान करलें।

अथवा कं का अर्थ है कामगम्। पुरुषों के मनोरथों में जो जाता है उसको कामग कहते हैं, पुरुषों के मनोरथों की पूर्ति के अनुकूल। कहा भी है कि जिस जिस अभिलाषा की चिन्ता करता है उस उस को निश्चय ही प्राप्त करलेता है। अथवा कं यह कामस्वरूप है। अर्थात् कामदेवस्वरूप है। काम के अनुकूल वशीकरण को सिद्ध करने वाला मेरा सत्व है यह अर्थ हुआ।

अथवा कं कालाग्नि को कहते हैं। सबका नाश करने से प्रलयाग्नि स्वरूप मेरा सत्व है। अथवा कं का अर्थ गणनाथ है। उन उन गण भूत प्रेत मनुष्य पशु पक्षी आदि समूह के नेता, उन उन गणों के स्वरूप अथवा उन उन गणों में प्रधानतासे प्रवृत्त हैं।

विधायकम् उत्पादकमित्यर्थः। अथवा कमिति विधिः। 'विधिर्ना नियतौ काले विधाने परमेष्ठिनि' इति मेदिनी। ततश्च विधिस्वरूपं नियतिस्वरूपमित्यर्थः। शुभप्रारब्धरूपं मत्सत्वम्। ममोपासनया शुभप्रारब्धमुपयाति ममोपासक इति भावः। अथवा विधिरिति विधानम्। ततश्च श्रौतस्मार्तक्रियाकलापानुपूर्वीस्वरूपं मत्सत्वमित्यर्थः। अविधिना विधीयमानं कर्म न फलजनकं भवति। उक्तं हि 'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिमिति'। परं ममोपासनायाम् अविधावपि अकरणेऽपि यज्ञादिकर्मणि फलोपधायकत्वं भवति।

यद्वा कमिति कल्याणीस्वरूपम्। एतेन सकलसंसारस्य पालकत्वं बोध्यते। कल्याणकारकत्वात्तस्येति भावार्थः।

अथवा कं विधाता को कहते हैं, विधातृ स्वरूप अर्थ हुआ। संपूर्ण संसार को बनाने वाला उत्पन्न करने वाला यह भाव है। अथवा कं विधि को कहते हैं। विधि पुलिङ्ग है, नियति काल विधान और परमेष्टी अर्थ में है यह मेदिनी कोप में कहा है। तो नियति स्वरूप यह अर्थ हुआ। शुभप्रारब्धरूप मेरा सत्व है। मेरी उपासना से मेरे भक्त शुभ प्रारब्ध को प्राप्त करते हैं। अथवा विधि विधानको कहते हैं। तो श्रौतस्मार्त क्रिया समूह को आनुपूर्वीस्वरूप मेरासत्व है। विधि से हीन कर्म से फलप्राप्ति नहीं होती है। कहाभी है कि जो शास्त्र विधि-को छोड़ कर अपनी इच्छानुसार कर्म को करता है, उसको कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती है और न तो सुख मिलता है न उत्तमगति ही मिलती है। परन्तु मेरी उपासनामें विधिहीन होने पर भी और यज्ञादि के न करने पर भी फलकी प्राप्ति होती है।

अथवा कं यह कल्याणी स्वरूप है। इससे संपूर्ण संसार का पालन करने वाला जाना जाता है। अभिप्राय यह है कि कल्याण करने-

यद्वा कमिति महाकालीस्वरूपम् । ततश्च मद्भक्तविरोधिनां दुष्टानां च नाशकत्वं मत्स्वरूपस्याभिव्यक्तं भवति । एवं च उत्पादकं पालकं नाशकं च ममसत्वस्वरूपमित्यभिव्यक्तं भवति । सृष्टिस्थितिसंहारकारकं मम सत्वमेवेति भाव: तस्मात्सर्वाधिनायकत्वात्सृष्टिस्थितिसंहारकारकत्वान्मम सत्वमेवोपास्यम् । तदधिष्ठायकोऽहम् ममानुपस्थितौ च मत्सत्वमेवोपास्यमिति फलितोऽर्थ: ॥२

भावभक्तिहरं भावमयं हे महात्मायं भवभयं हर ।
हे दैवतमयं मे मं तं ह्रीं मत्तस्त्वं भावोऽयम् ॥३॥

भावभक्तीति—पुनरपि स्वभक्तान् परमकरुणया सर्वानपि च समादरपूर्वकं बोधयितुं सम्मुखीकुर्वती ब्रह्मस्वरूपा मातृभूता संबोध-

---

वाला मेरा सत्व है ।

अथवा कं महाकाली स्वरूप है । तो मेरे भक्तों के विरोधी दुष्टों का नाश करने वाला मेरास्वरूप है यह स्पष्ट होजाता है । इसप्रकार उत्पन्न पालन और नाशकरने वाला मेरा सत्व है यह स्पष्ट हैं । सृष्टि स्थिति और संहार करने वाला मेरासत्व है यह अभिप्राय हुआ । इसलिए सबका नेता होने से और उत्पन्न पलन नाश करनेसे मेरे सत्व की ही उपासना करनी चाहिए । उसका अधिष्ठाता मैं हूँ मेरी अनुपस्थिति में सत्व की उपासना करनी चाहिए यह फलितार्थ हुआ ॥ २ ॥

अर्थ—भावभक्ति इत्यादि—फिर भी अपने सब भक्तों को अत्यन्त करुणा से आदरपूर्वक ज्ञान कराने के लिए संमुख करती हुई ब्रह्मस्वरूपा माता है यह संबोधन करती है । हे यह संबोधन है । हे भविकजीव ! जाति का आश्रय लेकर एकवचन दिया है । त्वं महात्मायं हर इसप्रकार अन्वय है । बड़ी है आत्मा जिसकी उसको महात्मा कहते हैं, अर्थात् संपूर्ण चराचर में जो विद्यमान है । उसको जो प्राप्त होता है वह महात्माय हुआ । ब्रह्म के साथ जो अभेद से विद्यमान है उसको 'हर'

यति हे इति। हे इति संबोधनम् हेभविकजीव ! जातित्वादेकवचनम्, त्वं महात्मायं हरेति सम्बन्धः, महान् आत्मा यस्येति सः महात्मा सकलचराचरेषु विद्यमानः तम् अयति गच्छतीति महात्मायः ब्रह्मणा सह यो ह्यभेदतया विद्यमानस्तम् हर प्राप्नुहि। स हि जीवन् सन् परमया करुणया स्वकृपाकटाक्षतस्त्वां बोधयिष्यति, तव भावानुसारतः पुत्रपौत्रादिलौकिकसमृद्धिं च पूरयिष्यतीति भावः। अनन्तरमपि तस्य ब्रह्मस्वरूपतया विद्यमानत्वात् पाञ्चभौतिकशरीरत्यागानन्तरमपि प्रतिमास्वरूपेण विद्यमानं महात्मायं माम् अन्यं वा तथाभूतम्, हर एहि। तं प्रतिमास्वरूपेण स्थापयित्वा पूजनस्तवनादिनवविधभक्तितया समुपास्वेति भावः सहि स्वशरीरत्यागसमये अवशिष्टानि सदसत्कर्माणि समुदीर्य भूमण्डले प्रक्षिपति, तानि च अचिन्त्योऽयं मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः इति वैदिकमन्त्रशक्तिबलात् प्रवि-

---

प्राप्तकर। वह प्राणधारण करता हुआ अत्यन्त दया और अपनी कृपा दृष्टि से तुमको सज्ञान करेगा। तुम्हारे विचार के अनुसार पुत्र पौत्र आदि लौकिक समृद्धि को पूर्ण करेगा। उसके ब्रह्मस्वरूप होने से पञ्चभूतशरीर को त्यागने के अनन्तर भी प्रतिमारूप से विद्यमान ब्रह्मस्वरूप मुझको तथा मेरे समान अन्य परमात्मा को प्राप्तकर। उसको प्रतिमारूप स्थापन कर पूजन स्तुति आदि नौप्रकार की भक्ति से प्रसन्न कर। वह अपने शरीर को त्यागने के समय भले बुरे कर्मों को विदीर्णकर भूमण्डल में फेंकता है और वह "अचिन्त्योऽयं मणिमन्त्रौषधीनांप्रभावः" इस वैदिकमन्त्र की शक्ति के बल से प्रतिमा में एकत्र होते हैं। इसलिए उसके उपासकों को स्वयं ही अच्छे कर्म अंश रूप से प्राप्त होते हैं। यही प्रतिमा पूजन का रहस्य है। इसलिए सदा उस प्रतिमा की उपासना करो यह तात्पर्य है। महात्मायं यह पुलिङ्ग है, ईश्वर स्वरूप होने से। स्त्री और

माथः संघीभवन्ति, अतश्च तदुपासकान् स्वतः सत्कर्माणि आंशिकतया सर्पन्तीति भावः, इदमेव प्रतिमा पूजनस्य रहस्यम्, अतश्च सर्वदा तं समुपास्स्वेति तात्पर्यार्थः। महात्मायमिति पुंस्त्वम्, ईश्वरस्वरूपत्वात्, स्त्रीपुंसयोः स्वरूपेण विद्यमानस्य ईश्वरस्य पाञ्चभौतिकस्वरूपेण स्त्रीपुंसयोर्भेदत्वावगतावपि वास्तविकविचारेणेश्वरस्य पुंस्त्वादिलिङ्गकृतभेदस्याकिञ्चित्करत्वात्। तथा च श्रुतिः "ननु त्वं स्त्री त्वं पुमान् त्वं वृद्धो जीर्णो दण्डेन वञ्चसि" इति। अयमाशयः, ननु निश्चयेन परमविचारेण योगाभ्यासेन तापोवलेन च साक्षात्कृतमेतद्। यदीश्वरे पुंस्त्वादिलिंगकृतभेदो न भेदाधायकः, एवं च त्वम्-सर्वचराचरेषु विद्यमानः अंशरूपेण पूर्णरूपेण वा वर्तमानः, स्त्री स्त्रीस्वरूपेण सर्वात्मना वर्तते इत्यर्थः, त्वम् इत्यर्थः, त्वम् इत्यस्य स्त्री इत्यस्य च अभेदेनान्वयः। साक्षात् स्त्रीस्वरूपेण ईश्वरो वर्तते, यथा देवी काली ममस्वरूपो वा ईश्वर इति तदाशयः।

पुरुष रूप से विद्यमान ईश्वर का पाञ्चभौतिक स्वरूप से स्त्री पुरुष के भेद का ज्ञान होने पर भी वास्तविक विचार से ईश्वर को पुलिंग मानना निस्तत्व है। इसमें श्रुति प्रमाण है। "ननु त्वं स्त्री त्वं पुमान् त्वं वृद्धो जीर्णेन दण्डेन वञ्चसि"। इसका भाव यह है कि; निश्चय ही परमविचार योगाभ्यास और तपोवल से यह प्रत्यक्ष किया, कि ईश्वर में पुलिंग से किया हुआ भेद, भेद का वोधक नहीं है। इस प्रकार तुम संपूर्ण चर अचर में विद्यमान अंशरूप अथवा पूर्ण रूप से वर्तमान हैं, स्त्री स्त्रीस्वरूप से वर्तमान है। त्वं इसका और स्त्री इसका अभेदान्वय है। साक्षात् स्त्री स्वरूप से ईश्वर प्रवृत्त है। जैसे कि देवी काली मेरा स्वरूप या ईश्वर स्वरूप है। तुम ईश्वर पुरुष हो, अर्थात् पुरुषस्वरूप से भी विद्यमान हो, जैसे कि विष्णु महेश्वर आदि स्वरूप। इसी प्रकार तुम ईश्वर वृद्ध और अत्यन्त वृद्ध स्वरूपको

त्वम् ईश्वरः पुमान् । पुंस्वरूपेणापि ईश्वरो वर्तते, यथा विष्णु-महेश्वरादिस्वरूपः । एवम् त्वम् ईश्वरः, वृद्धः वृद्धस्वरूपो जीर्णः–अतिवृद्धस्वरूपमापन्नः, दण्डेन वञ्चसि दण्डधारणेन ईश्वरादभिन्नत्वेपि सत्यनारायणपूजनविधिफलादिप्रतिबोधनाय जीर्णदण्डिनो रूपमापन्नः । इदमेव त्वं वञ्चसि यत् ईश्वररूपेण साक्षाद्द्रियमानमात्मानं निह्नूय जीर्णमनुष्यरूपेण दर्शयसि । इयमेव श्रुतिः सत्यनारायणकथायाः पूजायाश्च मूलभूतं बीजमित्यलमप्रसक्तानुप्रसक्तेन प्रकृतमनुसरामः ।

कीदृशं महात्मायमित्याह भावभक्तिहरम् । भावः हार्दिकस्नेहः–भक्तिः श्रद्धा तयोःहरम् प्रापकम् हृञ्हरणे हरणं प्रापणम् । यत्कृपातेः भावभक्ती समुत्पद्येते । अयमाशयः, स्वयं सम्बुद्धेषु चिदुन्मेषः स्वत एव जायते परं गुरुकृपातः समुन्मेषितान्तः करणेषु चित्प्रकाशः किञ्चित्किञ्चिज्जायते । तेन च भावभक्ती पूर्वं समुत्पद्येते । तदनन्तरं

प्राप्त हैं, ईश्वर होने पर भी दण्डधारण करने से सत्यनारायण की पूजनविधि और फल के ज्ञान के लिए वृद्धदण्डी के रूप को प्राप्त हुए । त्वं वञ्चसि इसका यही अभिप्राय है कि साक्षात् ईश्वरीय आत्माको छिपाकर वृद्ध मनुष्य शरीर को दिखाते हो । यही श्रुति सत्यनारायण की कथा और पूजा में मूल कारण है । इस प्रसंग को इतना ही बताकर प्रकृत प्रसंग को बताते हैं ।

यह किसप्रकार का महात्माय है इसबात को कहते हैं कि "भाव भक्तिहरम्" भाव हुआ हृदय का स्नेह और भक्ति हुई श्रद्धा । उन दोनों को जो प्राप्त करे वह भावभक्ति हर हुआ । हृञ् धातु का हरण अर्थ है हरण प्राप्त करने को कहते हैं, जिसकी कृपासे भावभक्ति प्राप्त होती है । भाव यह है कि स्वयं ज्ञान होने पर आत्मज्ञान अपने आप हो जाता है परन्तु गुरु की कृपासे अन्तःकरण शुद्ध होने पर कुछ कुछ

यथा यथा भक्तिगुरावीश्वरे वा दृढीभवति तथा तथा क्रमशश्चिदुन्मेषो भवति। अत्र घिसंज्ञत्वाद् भक्तिशब्दस्य पूर्वनिपातत्वे प्राप्ते भावशब्दस्य पूर्वनिपातस्तदुद्बोधकत्वात्, तज्जनकत्वादित्यर्थः। न खलु भावं विना भक्तिरुत्पद्यते। पूर्वं भावः तत्परिपाके सति भक्तिप्रादुर्भावो भवति।

यद्वा भावभक्तिहरम् भावभक्तेर्विनाशकम्, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं च समर्थमेनं प्राप्नुहि। ननु तस्य सर्वदा आनन्दस्वरूपत्वात् सकलचराचरस्य शुभकारित्वाच्चेत्कथमिव भावभक्तिविनाकत्वं तस्मिन्संपद्यते इति चेत्सत्यम्, परं तत्र विरुद्धाचारिषु तन्निन्दकेषु च स्वत एव भावभक्तिनाशः संपाद्यते, स तु तन्निन्दकबुद्धिषु करुणामपि विधत्ते। परं तु स्वभाव एवैषः, यन्निन्दकेषु भावभक्तिनाशो

आत्मज्ञान होजाता है। उससे पहले भाव और भक्ति उतपन्न होती है, पीछे जैसे जैसे गुरु और ईश्वर में भक्ति दृढहोती है वैसे वैसे क्रमपूर्वक आत्मसाक्षात्कार होता है। यहां घिसंज्ञा होनेसे भक्ति शब्दका पूर्वनिपात प्राप्त था किन्तु भक्ति का उद्बोधक तथा जनक होने से भाव का पूर्वनिपात हुआ। भावके विना भक्ति उत्पन्न नहीं होती है। पहले भाव प्राप्त होता है उसके परिपाक होनेपर भक्तिका प्रादुर्भाव होता है।

अथवा भावभक्तिहरम्-का अर्थ है भावभक्ति को नाशकरने वाला। करनेको न करने को और अन्यथा करनेको समर्थ इसको प्राप्तकर। परमात्मा सदा आनन्द स्वरूप और संपूर्ण चराचर का शुभ करने वाला है तो कैसे भावभक्ति को नाश करने वाला होसकता है ऐसा आपका प्रश्न हो तो ठीक है। परन्तु वहां विरुद्ध आचरण करनेवाले उसके निन्दकों की आपही भाव भक्ति नष्ट होजाती है। वह निन्दकबुद्धि वालों पर दयाभी करते हैं, किन्तु यह स्वभाव सिद्ध है कि निन्दक बुद्धि वालों में भाव भक्ति का नाश होजाता है। स्वभाव के विषय में

भवति। न खलु स्वभावः पर्यनुयोक्तव्यः, कथं वा वह्निरुष्णः, कथं च जलं शीतमिति कथं च पृथिवी गन्धवतीत्यादि वन पर्यनुयोक्तव्यम्। कदाचिच्च शरणागतस्यनिन्दकस्याप्यज्ञानिनो हृत्पटलं निरस्य तस्य ज्ञानचक्षुरुन्मीलयति, तेन च स स्वयमेव पश्चात्तापेन निन्दाप्रायश्चितं विधत्ते। कृतमेतद्‌वङ्गदेशे रामकृष्णस्वामिना।

येन यूरूपदेशे सहस्रशः समुद्बोधिताः। अत्रेदं हृदयम्, समुद्बोधयति भक्तान् सः। यद् भावभक्तिहरत्वाद् भेतव्यमप्यस्मात्, अतः निन्दादिप्रातिकूल्यं कस्यापीश्वरेणाभेदमापन्नस्य आंशिकरूपेण समुत्पन्नानां रामकृष्णादीनां तथाभूतानामन्येषामपि च न विधेयमिति।

पुनः कीदृशं महात्मायमित्याह भावमयम्। भावस्वरूपम्।

शंका नहीं की जा सकती। अग्नि उष्ण क्यों है जल शीतल क्यों है पृथिवी गन्ध वाली क्यों है इत्यादि आक्षेप अनुचित है। कभी शरणमें आये हुऐ निन्दक अज्ञानी के भी हृदयके अन्धकार को दूरकर ज्ञानचक्षु को देता है। उन ज्ञानके द्वारा वह स्वयं पश्चाताप करके निन्दा के प्रायश्चित्त को करता है। यह बंङ्गाल में रामकृष्णस्वामी ने किया है।

जिन्हों ने कि यूरूप देशमें हजारों को उपदेश दिया है। इसमें तत्व यह है कि वह ईश्वर भक्तों को ज्ञान देता है। अत्यन्त भावभक्ति होने से इससे डरना चाहिऐ। इसलिए ईश्वर से अभेद को प्राप्त हुए अंशरूपसे उत्पन्न रामकृष्ण आदि तथा उसी प्रकार किसीभी अन्य महापुरुषों की निन्दा आदि बुराई नहीं करनी चाहिए।

फिर कैसे महात्माय है कि भावमय अर्थात् भावस्वरूप। साक्षात् भाव जो स्नेह है उसके स्वरूपसे विद्यमान है, भावरूप से उत्पन्न है अथवा भावम्-अयम् यह विच्छेद करने से भाव जो अपनी सत्ता उस

साक्षाद् भावस्य स्नेहस्य स्वरूपेण विद्यमानम् । भावरूपतया समुत्पन्नमित्यर्थः । यद्वा भावम् अयम् । भावं स्वसत्ताम् अयम् प्राप्तम् । साक्षादेव ईश्वरस्वरूपेण विद्यमानम्, यद् दर्शनादीश्वरस्य प्राप्तिरिव प्रतीयते । भावमयशब्दस्य पुनरुपादानं तत्पदद्यचितस्य पदार्थस्य दार्ढ्यप्रतिपादनान्न दोषावाहकमिति ।

पुनः कीदृक्षमित्याह भवभयम् । भवस्य भयम् भयस्वरूपम्, भवस्य उत्पत्तेर्नाशकत्वात् भयस्वरूपमित्यर्थः । यो हि यस्य नाशको भवति स तस्य भयस्वरूपमेव भवति । उत्पत्तेर्नाशकत्वं च तद्दर्शनाद्ज्ञानोपलब्धेर्मोक्षजनकत्वात् । मोक्षानन्तरमुत्पत्तेरभावात् । तथा च श्रुतिः न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते' ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति इत्यादि ।

अथ पुनः भक्तान् बोधयति हेभक्ताः! मे सं तं ह्रीं दैवतमयम् । अयमाशयः । मे मत्सम्बन्धि सं तं ह्रीं दैवतमयम्,

---

को अयम् जो प्राप्त हो उसको भावमयम् कहते हैं । अर्थात् साक्षात् ईश्वर स्वरूप से विद्यमान है, और जो दर्शन करने से ईश्वर प्राप्ति समझे जाते हैं । भावमय शब्द को दुबारा इसलिए दिया जाता है कि उन उन पदोंसे सूचित पदार्थों की दृढता हो जाय इसलिए पुनरुक्ति दोष नहीं है । फिर कैसे महात्मा हैं कि भवभय हैं । भव जो संसार हैं उसको भयस्वरूप हैं क्योंकि संसार को नाश करने वाले हैं । जो जिस को नाश करनेवाला होता है वह उसको भयंकर स्वरूप दिखाई देता है उत्पत्ति को नाश करने वाले वह महात्मा हैं, और ज्ञान को देकर मोक्ष देने वाले हैं । मोक्ष होने पर फिर जन्म नहीं होता है । इसमें श्रुति भी प्रमाण है कि वह फिर जन्म नहीं लेता है, और ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही होजाता है, इत्यादि ।

श्री माता जी फिर भक्तों को संबोधन करती हैं, हे भक्ताः ! ।

एतत् त्रयं मदीयदैवीकलास्वरूपम् । दैवतमयत्वात् तदुपासनमत्यधिकफलजनकम् । कीदृक् तत्र दैवतमयत्वम्, कस्य च फलस्य जनकमिति तदर्थप्रदर्शनेन तत्फलजनकतां दर्शयति ।

समिति—समिति कुबेरबीजम् । दैवतमयमत्स्वरूपत्वात् मद्ध्यानेन मन्नाम्ना च एतदुपासनेन धनार्थी कुबेरसंपत्तिमपि प्राप्तुमीष्टे । यद्वा समिति देवीबीजम् पूर्ववत् मत्स्वरूपतया समुपासनेन देवीशक्तिसम्पत्तिमाप्नोतीत्यर्थः । यद्वा ममिति धूम्रध्वजः । मम दैवतमयत्वादस्योपासनेन अग्निस्वरूपो भवति यथा अग्निः प्रकाशमान् भवति एवमेवायमपि जगति परमां प्रसिद्धिं चित्स्वरूपतां वा प्रतिपद्यते यद्वा सम् इति रक्षोविदारिणी । एतदुपासनाद् दुष्टविदारणसामर्थ्यं तद्विदारकसहायकसंपत्तिं वा प्राप्नोतीत्यर्थः । नैनं रक्षोभूताः विघ्नाः कस्मादपि शुभकार्याद् वारयितुमीशते इति मम दैवतमयमेतदुपास्स्वेत्यर्थः,

---

मे सं तं ह्रीं दैवतमयम् । इसका अर्थ यह है कि मुझसे संबन्ध रखने वाला सं तं ह्रीं दैवतमय है । यह तीनों मेरे दैव कला स्वरूप हैं । दैवमय होनेसे इनकी उपासना अत्यन्त अधिक फल देने वाली है । किस प्रकार उसमें दैवतमय है और किस फल को देता है, यह उसके अर्थ को बताने से उसकी फलजनकता को बताता है, 'समिति' । सं यह कुबेरबीज है । दैवतमय मेरे स्वरूपके ध्यान से और मेरे नाम से इस सं तं ह्रीं की उपासना करने से धनकी इच्छा करने वाला कुबेर के समान धनसम्पत्ति वाला होजाता है ।

अथवा सं यह देवी बीज है । दैवतमय मेरे स्वरूप की उपासनासे देवी की शक्ति और संपत्ति को प्राप्त करलेता है । अथवा सं का अर्थ अग्नि है । मुझसे सम्बंध रखने वाले दैवतमय इसकी उपासना करने से अग्निस्वरूप होजाता है । जैसे कि अग्नि प्रकाश मान होती है, इसी प्रकार यह भी संसार में परमसिद्धि और चित्स्वरूप को प्राप्त होता

यद्वा समिति ईश्वरः, दैवतमयम् ईश्वररूपं मत्स्वरूपम्, एतदुपासनेन ईश्वरत्वं तत्सामर्थ्यं वा समाप्नोतीत्यर्थः । यद्वा समिति कलकण्ठः, जगद्बीजम् । नर्तकः, प्रकृतिः, भक्तप्रियः शशी सुधारसमयी, सोऽहम्, सौख्यदा हिरण्यपुरवासनी हंसः, भद्रम् इत्यादयो ह्यर्थाः । ततश्च दैवतमयस्य मत्स्वरूपतयास्योपासनेन तत्तन्नामगतां तत्तच्छक्तिमाप्नोतीति सुधीभिः समुन्नेयम्, विस्तरभयान्न स्फुटीक्रियते इति ।

अथ द्वितीयस्य तमित्यस्य स्वरूपमर्थं चाह तमिति तडिदाभः तमिति दैवतमयं मे मत्सम्बन्धिबीजम्, मत्स्वरूपत्वाच्च तस्य चोपासनेन तडिदाभां प्राप्नोति । तस्य तडिदिव कान्तिः संपद्यते । यद्वा नमिति पीठमध्यस्थः, एतस्य दैवतमयत्वात् मत्स्वरूपतया

है । अथवा सं यह राक्षस को नाशकरने वाला है । इसी उपासना से दुष्टों को नाश करने में समर्थ होता है, और नाशकरने में सहायता देने वाली संपति को प्राप्त करता है। राक्षसरूपविघ्न इसको किसी भी शुभ कार्य से वञ्चित नहीं कर सकते हैं । संपूर्ण शुभ कार्य निर्विघ्न पूर्वक सिद्ध होजाते हैं, यह अभिप्राय है । इस लिए मेरे दैवतमय इस सं तं हीं की उपासना करो । अथवा सं ईश्वर को कहते हैं । दैवतमय ईश्वररूपमेरा स्वरूप है । इसकी उपासना करने से ईश्वर भाव अथवा ईश्वर के समान शक्तिको प्राप्त करलेता है ।

अथवा सं के अर्थ, कलकण्ठ, जगद्बीज, नर्तक, प्रकृति, भक्तिप्रिय, शशी, सुधारसमयी, सोहम्, सौख्यदा, हिरण्यपुरवासिनी, हंस, और भद्र हैं । तो दैवतमय मेरे स्वरूप इस सं तं हीं की उपासना करने से उपरोक्त नामों में रहने वाली उन उन शक्तियों को प्राप्त करलेता है । इसका ज्ञान विद्वान् मनुष्य स्वयं करलें । विस्तार के भय से यहां स्पष्ट नहीं किया गया ।

एतदुपासनेन पीठमध्यतां प्राप्नोतीत्यर्थः । यथा सम्राट् चक्रवर्ती राजा सर्वराजन्यक्रानां मध्ये पीठमध्यस्थः शोभते तथैव अयमपि सर्वत्र प्रधानतां प्राप्नोतीत्यर्थः । अथवा मुक्तः सन् सिद्धशिलायाः पीठमध्यस्थो भवति । अथवा सायुज्यमुक्तिमापन्नः वैष्णवसिद्धांतरीत्या कनकपीठमध्यस्थेन विष्णुना सह अभेदमापन्न पीठमध्यस्थो जायते । यद्वा तमिति, ध्वजी, एतदुपासनेन सर्वाधिपतित्वमाप्नोति यद्वा तमिति मरुत्, सर्वंगतित्वमेतेन बोध्यते, यद्वा तमिति रत्नकण्ठ तदुपासनेन समृद्धिमत्वं श्रेष्ठकण्ठत्वं वा विज्ञाप्यते । यद्वा तमिति । शुद्धगामी । ततश्च कामक्रोधादिविघ्नबाधारहितः शुद्धगामी निर्लेप-परमानन्दस्वरूपः संपद्यते । यद्वा तमिति तमोबीजम्, ततश्च मत्स्वरूपतयाऽस्योपासने दैवतमयत्वाद् तमिति मत्स्वरूपमापन्नमे-तमेवाज्ञानान्धकारं निवर्तयति ततश्च स्व एव चिदाभासः

अब तं-इसके स्वरूप और अर्थ को कहते हैं । तं-का अर्थ विजली के समान कान्ति वाला । तं यह दैवतमय मेरा बीज है । मेरे स्वरूप इस तं की उपासना करने से विजली के समान कान्ति वाला होता है अथवा तं का अर्थ कामी है । इसकी उपासना करने से संपूर्ण लोकों की इच्छा पूर्ण करने वाला होता है । अथवा तं का पीठ के मध्य में स्थित अर्थ है । यह दैवमय है मेरे स्वरूप इसकी उपासना करने से पीठ के मध्यमें वैठने के योग्य होता है । जैसे कि चक्रवर्ती राजाओं के बीच में उच्च सिंहासन में बैठ कर शोभाको प्राप्त होता है, उसी प्रकार यहभी सब जगह प्रधान हो जाता है । अथवा मुक्त होकर सिद्धि की शिला पीठ में स्थित होजाता है अथवा सायुज्य मुक्ति को प्राप्तकर वैष्णवों के सिद्धान्त के अनुकूल सुवर्ण के पीठ में स्थित विष्णु भगवान् के साथ अभेदरूप को प्राप्त होकर सुवर्ण के पीठमें स्थित हो-जाता है । अथवा तंका अर्थ ध्वजा वाला है. अर्थात् सबका नेता । इस की उपासना से सबका अधिपति बन जाता है । अथवा तं का अर्थ

प्रतिपद्यते इति मोक्षसाधकत्वं । परंपरयाऽस्य सूचयति । यद्वा तमिति तारकः । त खलु केवलं स्वयमेवमोक्षं प्रतिपद्यते किं तु मत्स्वरू-पतया तदुपासनेन तथाभूतां शक्तिमाप्नोति येन भवि-कजनान् तारयितुमपीष्टे । यद्वा तमित मकरध्वजः । मकरध्वजः कामः । मत्स्वरुपतया तमित्यस्योपासनेन वामदेववत् कमनीयतां प्रतिपद्यते । कामनीनां परमप्रियो भवतीत्यर्थः । यद्वा तमिति रमा । तदुपासनेन लक्ष्मीवान् संपद्यते । इति दिक् । अथ तृतीयंतस्या दैवतमयं ह्रींमिति प्रणवं व्याचष्टे । ह्रींमिति, देवी-प्रणवः । दैवतमयस्य मत्संबन्धिनो ह्रींमिति प्रणवस्योपासनेन दैवीं शक्तिमापद्यते । यथा देवी भगवती जगदम्बा सर्वशक्तिसम्पन्ना सर्व-मपि कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं च समर्थाऽस्ति तथैव तस्या ह्रींमिति बीजस्य मत्सम्बन्धित्वेन समुपासनेन शीघ्रमेव तस्याः सामर्थ्यं समा-

---

वायु है, वायु के समान सब जगह जानेवाला होता है । अथवा तं का अर्थ रक्तकण्ठ है । इसकी उपासना करने से समृद्धि वाला और श्रेष्ठ-कण्ठवाला हो जाता है । अथवा तं का अर्थ शुद्ध गमन करने वाला है । तो काम क्रोध आदि विघ्नबाधाओं से रहित होकर शुद्धगामी निर्लेप परमानन्द स्वरूप होजाता है । अथवा तं यह अन्धकार बीज है । तो मेरेस्वरूप से इसकी उपासना करने पर दैवतमय होने से तं इस मेरे स्वरूप को प्राप्त हुआ अज्ञानरूपी इस अन्धकार बीजको जड़सेही नाश कर देता है । तो स्वयं ही आत्मज्ञान हो जाता है । इस प्रकार पर-परा से मोक्षका साधक इसको सूचित करता है । अथवा तं का अर्थ तारक है । निश्चय सेही केवल अपने आप मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है, किन्तु मेरे स्वरूप के द्वारा इसकी उपासना करने से उसप्रकार की शक्तिको प्राप्तकरता है, जिससे भविक जनों को तारने के लिए समर्थ हों । अथवा तं का अर्थ मकरध्वज है । मकरध्वज काम को कहते हैं । मेरे स्वरूप के द्वारा तं की उपासना करने से कामदेव के समान

प्रीतीत्यर्थः। अयमाशयः। सोऽपि तथा तां समुपासमानः तस्या इवकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं च समर्थो भवति। इदमत्र हृदयम्। स हि तदुपासनाबलात् स्वभक्तस्य स्वाभिमतस्य वा पुत्रपौत्रादिसमृद्धिं मोक्षोपयोगिनीं भक्तिसम्पादिकां वा सम्पत्तिं वा कर्तुं प्रभवति। यथा वङ्गदेशे जगदम्बासमुपासकेन वामाखेपेन, यथा वा रामकृष्ण-स्वामिना—विवेकानन्दप्रभृतयस्तथाभूतायाः प्रापिक शक्तिं यतो ह्यमरीकायां बहवः प्रतिबोधिता इति विदितमेतेतिहासविदमलमत्रबहूक्तेऽन। अकर्तुंनिषेद्धुं भक्तप्रतिकूलं प्रतिरोद्धुं समर्थो भवति, यथा मार्क-ण्डेयस्य मृत्युः प्रतिरुद्धा, यथात्रा गोशालकेन प्रतिक्षिप्ता तेजो-लेश्याऽवरुद्धा, यथावा जडीकृतो महादेववीक्षणेन तदुपरि वज्रं मुमुक्षन् वज्रपाणिरित्यादयो बहवो ऽनुसंन्धेयाः।

सुन्दररूप वाला हो जाता है। स्त्रियों का परम प्रिय होता है। अथवा तं रमा को कहते हैं। इस तं की उपासना करने से धनवान् होता है। इसके अनन्तर उसके दैवतमय ह्रीं प्रणव का व्याख्यान करते हैं। ह्रीं यह देवी प्रणव है। मुझसे सम्बंध रखनेवाले दैवतमय ह्रीं प्रणव की उपासना करने से देवी की शक्ति को प्राप्त करलेता है। जैसे कि सर्वशक्ति वाली भगवती जगदम्बा सब कुछ करने न करने और अन्य प्रकार करने को समर्थ है, उसी प्रकार मुझसे सम्बंध रखने वाले उसके ह्रीं बीज की उपासना करने से शीघ्रही उस भगवती की शक्ति को प्राप्त करता है। अभिप्राय यह है कि उसकी उपासना करता हुआ वह भी करने न करने और अन्यप्रकार करने को समर्थ होता है। इसमें तत्व यह है कि वह उसकी उपासना शक्ति के द्वारा अपने भक्तके अथवा अपनी इच्छा के अनुकूल पुत्र और पौत्र आदि समृद्धि धनसंपत्ति अथवा मोक्ष को देने वाली भक्ति को प्राप्त करलेता है। जैसे कि बंगाल में जगदम्बा के उपासक वामाखेप और राम कृष्ण स्वामी ने विवेकानंद प्रभृतियों को उस शक्ति को पहुँचाया जिससे कि उन्हों ने अमरीका में

अन्यथा कर्तुं अन्यप्रकारेण स्थितं वस्तु अन्यप्रकारेण संपादयितुमपि, स प्रभवति। यथा बौद्धैः सह शङ्कराचार्यस्य कुमारिलस्य वा शास्त्रार्थे देवीमाराध्य प्रार्थितमुभयपक्षीयाभ्याम्। तत्र बौद्धैः प्रार्थितम्, यदत्र घटे निहितं तन्मम बुद्धौ प्रतिभातु। एवं च यदत्र निहितं तत्तस्य बुद्धौ प्रतिभातम्, उक्तं च तदेव तेन, परं शङ्कराचार्येण कुमारिलेन वा देवीमाराध्य प्रार्थितम्, यन्मयोक्तं स्यात् तदेवात्र घटे भवतु। ततश्च तेन पयुक्तं तदेव जातम्, एवं च अन्यस्थितम् अन्यजजातमिति अन्यथा कर्तुमपि स प्राभवत्। यद्वा ह्रीमिति। परा, परा शक्तिस्वरूपं ह्रीमिति बीजम्, एतदुपासनेन परां विद्यां परां शक्तिं चापद्यते। अत्रबहु वक्तव्यम्, तच्चाग्रे वक्ष्यामि ततोऽवधेयम्। एवं च दैवतमयस्य

अनेक मनुष्यों को ज्ञान पैदा कराया। इसबात को इतिहास जानने वाले सभी जानते हैं इसलिए इसका विस्तार यहां नहीं किया गया। अपने भक्त के विरुद्ध कार्य रोकने को समर्थ होता हैं। जैसे महादेव जी ने मार्कण्डेय की मृत्यु रोकी। जैसे गोशालक की फेंकी तेजोलेश्या रुक गई। और वज्रको फेकता हुआ इन्द्र महादेव जी की दृष्टि से जड़ होगया और भी उदाहरण जान लें।

अन्यप्रकार से स्थित वस्तु को अन्यप्रकार से बताने के लिए भी वह समर्थ हो जाता है। जैसे कि बौद्धो के साथ शङ्कराचार्य के अथवा कुमारिल के शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष वालों ने देवी की आराधना करके प्रार्थना की। बौद्धों ने प्रार्थना की कि जो इस घड़े में रक्खा है उसका ज्ञान मुझको हो जाय। इस प्रकार जो घड़े में रक्खा था उसका ज्ञान बौद्धों को होगया, और उन्हों ने वह बता भी दिया। परन्तु शङ्कराचार्य ने अथवा हीं कुमारिल ने देवी की प्रार्थना करके कहा कि जो मैं कहूँ वही इस घड़े में हो जाय, तो जो उन्होंने कहा वही उस घड़े में होगया। इस प्रकार रक्खा कुछ और था और हुआ

मत्सम्बन्धिन: सं तं ह्रीम्, इति बीजयस्योपासनेन मत्प्रियो भवति दैवीं शक्तिं चापद्यते शुद्धमार्गगो-मोक्षपथं प्राप्नोतीत्यर्थः। तदुपासनं पर्याप्तया अपर्याप्तया चोत्रयथाऽपि संपद्यते। तच्च भक्तस्येच्छानुसृतम्, स हि पर्याप्तया यथेच्छं कमप्येकमक्षरमुपाश्रयेत, अपर्याप्तया वा समुदितं सं तं ह्रींमिति बीजत्रयं वा उपाश्रयेत। फलजनकत्वंतूभयत्रेति। मन्त्रस्वरूपचेदम्। संतंह्रींमात्रे नमः। एतन्मन्त्रोपासनेन सर्वकामनां प्राप्नोतीत्यर्थः।

पुनः करुणया बुद्ध्या भक्तान् भविकजनान् वा तितारयिषितुं स्वाश्रयत्वं स्वाभेदं च बोधयति।

"मत्तस्त्वं भावोऽयम्" हे जीव! हे भक्त! वा, त्वं मत्तः, मत्सकाशात्समुत्पन्न, अहमेव सर्वेषामप्युत्पत्तिस्थानम्, त्वम्

कुछ और, इसलिए अन्य प्रकार करने को वह समर्थ है। अथवा ह्रीं बीज पराशक्ति स्वरूप है। इसकी उपासना करने से पराविद्या और पराशक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस विषय में बहुत कहना है वह आगे कहूंगा विस्तार पूर्वक वहाँ समझ लेना। इसप्रकार दैवतमय मेरे संबन्धी सं तं ह्रीं बीज की उपासना करने से मेरा प्रिय होता है दैवी शक्ति को प्राप्त करता है और शुद्धमार्ग में चलता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी उपासना पर्याप्ति अथवा अपर्याप्ति दोनों प्रकार से हो सकती है। यह भक्त की इच्छा है कि वह पर्याप्ति रूप से सं तं ह्रीं में से किसी एक अक्षर की उपासना करे अथवा अपर्याप्ति रूप से सारे सं तं ह्रीं की उपासना करे। फल प्राप्त तो दोनों ही प्रकार से है। "सं तं ह्रीं मात्रे नमः" यह मन्त्र का स्वरूप है। इस मन्त्र की उपासना करने से संपूर्ण इच्छा पूर्ण हो जाती है।

फिर दया भाव से भक्तों को और अच्छे मनुष्यों को पार करने के लिए अपने आश्रय और अपने को अभेद को प्रकट करती है,

पदेन सर्वस्य जीवस्य बोधनात् जातित्वाद्वा तद्ग्रहणम्, तथा च श्रुतिः, तत्त्वमसीति। एतदनुगतैवेयंश्रुतिः। अयं भावश्च मत्तः। अनुक्तोऽपि समुच्चयार्थकश्चकारोऽवगन्तव्यः। स चायं भावश्चित्स्वरूपोऽवगन्तव्यः। मत्कृपातः एव चित्पातो भवति। चित्प्रकाशः भविकजनस्य हृदि गुरुकृपातो वा भवति, क्वचित् २ गुरुपदेशं विनाऽपि कस्य चिद्हृदि चित्प्रकाशः स्वयमेव जायते, अनन्तरं च सत्कर्मतदाराधनवशात् गुरुकृपातश्च प्रवर्धते। उभयत्रापि मत्कृपातः एवचित्प्रकाशरूपो भावो भवति। मत्कृपां विना न हि स्वयं चित्पातो भवति नापि तथाभूतगुरोरुपलब्धिर्भवति। ननु भवत्या इदानी मिह विद्यमानत्वात् पूर्वकाले स्वयंसम्बुद्धानां भविष्यकाले च संभोत्स्यमानानां कथमुपपत्तिरिति चेच्छृणु ब्रह्मस्वरूपेण विद्यमानतया

"मत्तस्त्वं भावोऽम्" हे जीव! हे भक्त! तू मेरे सकाश से उत्पन्न है, क्यों कि मैं ही सबके उत्पत्ति का स्थान हूँ। त्वं पद से सब जीवों को संकेत किया, अथवा जीव जाति का ग्रहण किया। तत्त्वमसि श्रुति भी इसमें प्रमाण है। "अयं भावश्च मत्तः" यहाँ चकार नहीं भी कहा है फिर भी समुच्चय के लिए चकार समझलें। उस अयं भाव का अर्थ चित्स्वरूप है। मेरी कृपा से अथवा गुरु की कृपा से अच्छे मनुष्यों के हृदय में आत्मज्ञान हो जाता है। कहीं कहीं गुरु के उपदेश के बिना भी किसी के हृदय में आत्मज्ञान हो जाता है और पीछे गुरु की कृपा से उपासना करने पर उसके अच्छे कर्म बढ़ जाते हैं। दोनों प्रकार मेरी कृपा से ही आत्मज्ञान का भाव प्राप्त होता है। मेरी कृपा के बिना न तो आत्मज्ञान प्राप्त होता है, और न अच्छे गुरु की ही प्राप्ति होती है। निश्चय ही आप इस समय यहाँ विद्यमान हैं, किन्तु पहले जिनको आत्मज्ञान हो गया है, अथवा भविष्य काल में होगा तो यह किस प्रकार संगत हो सकती है, यह शंका आपको हो तो सुनिए। मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ, मैं पूर्वकाल

मम पूर्वकाले परस्मिन् काले चावस्थानत्वान्न किञ्चिदनुपपद्यते। मत्कृपातः एव चित्पातो भवतीत्यस्यायं भावः। मदभेदतयाविद्यमानस्य परब्रह्मपरमात्मनः कृपातश्चित्पातो भवतीति सर्वं सुसम्पन्नमेव। मद्दृष्टिपथमागतेषु मम कृपाभाजनेषु चावश्यं चित्पातो भविष्यति। सचेह जन्मनि भवेजन्मान्तरे वा इति तु अनिर्वचनीयमेव यतो हि अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिमिति प्रसिद्धमेव।

यद्वा "अयम् अंभाव मत्तस्तु" शब्द एव कारार्थः। अयम्-अम्भावः मत्तः एव। अकारस्य बीजरूपतया विवक्षणात् अम् इति सानुनासिकः। सर्वत्रैव बीजेषु सानुनासिकत्वमिति संप्रदायः। ततश्चअइत्यस्यबीजत्वेन अम् इत्यस्येर्थः अतश्चसत्तः एव सत्वम्। अइत्यनेन बोध्याः सर्वेऽपि पदार्थाः अम् इत्यनेन बोध्या अव-

---

में भी थी और भविष्य काल में भी रहूँगी, इस लिए यह शंका नहीं होगी। इसका भाव यह है कि मेरी कृपा से ही ब्रह्मज्ञान होता है। मुझसे अभिन्न परब्रह्म परमात्मा की कृपा से आत्मज्ञान होता है यह स्पष्ट ही है। मेरी दृष्टि के सामने जो आयँगे और मेरी कृपा जिनके ऊपर हो जायगी उनको अवश्य ही आत्मज्ञान होगा। वह आत्मज्ञान इस जन्म में ही अथवा जन्मान्तर में हो, इस बात के लिए कुछ निश्चय नहीं कहा जा सकता है। क्यों अनेक जन्मों की सिद्धि होने पर उत्तम गति प्राप्त होती है। यह बात सबको ही विदित हैं।

अथवा अयं का अर्थ अभाव है। मत्तस्तु में तु का एव अर्थ है। तो यह अर्थ हुआ कि यह अंभाव मुझसे ही है। अकार को बीजरूप से कहा गया है और वह अं इस प्रकार अनुनासिक सहित है। सब जगह बीजों में अनुनासिक होता है यह संप्रदाय है। तो अ यह बीज होने से अं यह अर्थ हुआ। मत्त एव का अर्थ है कि मुझसे ही

गन्तव्याः ते च मत्तः यवेयत्र्थः । अथअम्बोध्यान् पक्षार्थनाह । अम्इति मनो बीजम् । ततश्च सत्कार्येषु मानसः प्रवृत्तिर्मत्कृपात एव । असत्कार्येषु च दुरात्मनां फलप्रदानाय यति । मामनुश्रयतां च मनः सुतरामेव परिशुद्धम, मोक्षमार्गानुगामिच संपद्यते अकारस्वरूपस्य अम्भावस्य मत्तः समुत्पन्नत्वात्, तस्य च मनोबीजत्वादिति । एवं च असत्कार्येषु भविकजनस्य मद्भक्तस्य च मनोनिवृत्तिरव्यवगन्तव्या । अम्भावस्य मत्समुत्पन्नत्वात् । तस्यच मनोवीजत्वादित्यनुपदमेवोक्तम् । यद्वा अम्इति अनुत्तरम् । आनन्दादप्यूर्ध्वम् अनन्तरम् अनुन्तरस्थानम् । अनिर्वचनीयं तत् । ततोऽश्रोदभवगन्तव्यम् । वीजरूपस्य अभित्यस्य भावः मत्त एव । अनुत्तरं स्थानं मत्त एवेति फलितोऽर्थः । आनन्दादन्तरमूर्ध्वं गच्छन्मामेव प्राप्नोति, तत्र ममैव सत्त्वात्. मत्त एव तस्य

सत्व है। इसलिए अं इससे जानने योग्य सब पदार्थों का ज्ञान अं से करना चाहिए और वह सब पदार्थ ज्ञान मुझसे ही है। इसके अनन्तर अं से जानने योग्य पदार्थों को कहते हैं। अ (अम्) यह मानों बीज हैं। तो अच्छे कार्यों में मानसिक प्रवृत्ति मेरी कृपा से ही होती हैं, और बुरे कार्यों में दुष्टों को दण्ड देना भी मेरी ही कृपा है। मेरे सेवकों का मन शुद्ध है, और मोक्ष मार्ग में जाने वाला है। अकार स्वरूप अम्भाव मुझसे उत्पन्न है, और मनोबीज है। इसलिए बुरे कार्यों में मेरे अच्छे भक्त का मन नहीं जाता है। अथवा 'अम्, का अर्थ अनुत्तर है। आनन्द से भी अधिक श्रेष्ठ और अकथनीय है। तो यह समझ लेना चाहिए कि अं यह बीज मुझसे ही उत्पन्न है। और अकथनीय का स्थान भी मुझसे ही है। आनन्द के पीछे ऊर्ध्वगति को जाता हुआ मुझको ही प्राप्त होता है क्यों कि वहाँ मेरा ही सत्व है। वहाँ और कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। अथवा अ (अम्) का अर्थ अमृत है। अम्भाव मुझसे ही है, इसलिए

सत्वम् , नान्यत्किमपि तत्रोपलभ्यते इति भावः । यद्वा अअम्इति अमृतम् । अम्भावः मत्तः । मत्त एव अमृतो जीवोभवति तथा च श्रुतिः । 'न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते' इत्यादि अन्यत्रापि यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम इति स्वसत्वेन स्वस्थानं विस्पष्टं प्रतिबोधितं भवतीत्यर्थः । यद्वा अम्इति प्राप्तः । एवं च अंभावः मत्तः । तस्य जीवस्य प्राप्ति-सत्वं मत्तः । स जीवः तत्स्थानं मां वा प्राप्य स्वपुरुषार्थं मन्यते । स्वाभिमतं स्वार्थं प्राप्तः इति मत्त एव । यद्वा अम्इति आत्मबीजम् । ततश्च मत्त एवायम्भावः एवंच आत्मानो जीवाः मत्तः एव । तथा च श्रुतिः 'एकोऽहं बहुस्याम् इति । अन्यनयेऽपि अहमेव• तत्तत्कर्म-फलसाक्षितया तत्तद्योनिषु क्षिपामीत्योपचारिकतया तद्बीजस्य भावः

जीव मुझसे ही जन्म मरण से छूट जाता है । न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते, यग्दत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम, इत्यादि श्रुति भी इसमें प्रमाण हैं कि वह फिर जन्म लेने को वापिस इस लोक में नहीं आता है । जहाँ जाकर वापिस नहीं होता है वही मेरा उत्तम धाम है । अपने सत्व से अपना स्थान स्पष्ट बता दिया है । अथवा अ (अम्) का अर्थ प्राप्त हैं । इसप्रकार अं भाव मुझसे है, तो उस जीव की प्राप्ति मुझसे है । वह जीव उस उत्तम स्थान को अथवा मुझको पाकर अपने को कृतकृत्य मानता है । अपने इच्छित अर्थ को मेरे द्वारा ही पाता है । अथवा अम् यह आत्मबीज है, और यह अं मुझसे ही है । इस लिए जीवात्मा मुझसे ही हैं । एकोऽहं वहुस्याम् यह श्रुति भी इसमें प्रमाण है । औरों के मत में भी उन उन कर्मों के फल का साक्षी मैं हीं हूं इसलिए उन-उन योनियों में मैं जीव को भेजता हूं, औपचारिक भाव से वह बीज मुझसे ही है । अथवा अम् का अर्थं कामरूप है । कामरूप से इच्छानुकूल रूप मेरे द्वारा ही प्राप्त होता है । इच्छानुकूल रूपं अणिमादिसिद्धि स्वरूप है ।

मत्त एव । यद्वा अमिति कामरूपः । कामरूपता यथेच्छाचारि-रूपत्वं मत्त एव भवति । यथेच्छाचारिरूपत्वं च अणिमादिसिद्धिरूपम्, ताश्च अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वाशित्वमित्यष्टविधासिद्धयः । याभिः कामरूपत्वं मनुष्यो गच्छति । ताश्च-सिद्धयःमत्त एव भवन्तीत्यर्थः । यद्वा अमिति परमः । परमः परमोत्कृष्टः, तत्वं च मत्त एवं भवति ।

यद्वा अमिति प्रकाशः । तद्भावश्च मत्त एव भवति । चित्प्रकाशः पुरुषस्य हृदि मत्त एव समुत्पद्यते, ममैव कृपातः पुरुषस्य हृदि प्रकाशो जायते इत्यादि पूर्वमावेदितमेव, भिन्नस्वरूपतया तस्य बोधनान्न पौं नरूक्त्यम् । यद्वा अमितिप्रकृतिः तद्भावश्च मत्त एव । यथा अग्नेर्दाहकत्वम्, जलस्य शीतलात्वम्, पृथीव्याः काठिन्यमित्यादिकं तत्तद्व-स्तूनां स्वभावः मत्त एव । प्रकृतिरिपि मत्त एव । समुत्पद्यते इति फलितो-ऽर्थः । यद्वा अमिति प्रतिपन्नः तद्भावश्च मत्त एव भवति । प्रतिपन्नः सिद्धः

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, यह आठ प्रकार की अणिमादि सिद्धियाँ हैं। जिनके द्वारा कामरूप के समान सुन्दररूपवाला मनुष्य हो जाता है। वह सिद्धि-याँ मुझसे ही प्राप्त होती हैं। अथवा अम् का अर्थ परम है। इस-लिए परम उत्कृष्ट तत्व मुझसे ही है।

अथवा अम्, प्रकाशको कहते हैं, और वह मुझसे ही उत्पन्न है। पुरुषके हृदय में आत्मा का प्रकाश मेरे से ही होता है। मेरी कृपासे ही मनुष्यों को आत्मज्ञान होता है यह तो पहिले ही कहा गया है। भिन्न स्वरूपसे उसको बताने में पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा अम् प्रकृति को कहते हैं, और वह मुझसे ही उत्पन्न है। जैसे अग्नि का जलाना जलका ठंडापन पृथ्वी में कठिनता आदि उन उन वस्तुओं का स्वभाव मुझसे ही है। भाव यह हैं कि प्रकृति भी मुझसे ही उत्पन्न है। अथवा अम् का अर्थ प्रतिपन्न है। प्रतिपन्न

स्वाभिमतं गतः इत्यादीनां भावो मत्त एव जायते। मत्कृपात एव मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः। यद्वा अमिति ब्राह्मणः। ब्रह्म वेदः तात्विकज्ञानं परमात्मा वा, तंज्जानातीति ब्राह्मणः। ब्रह्मज्ञानित्वं मत्त एव भवति अथवा सर्वोत्कृष्टतया वर्तमानत्वम्, ब्राह्मणत्वम् विराटरूपस्यपरमात्मनो मुख रूपत्वं मत्त एव भवति। यद्वा अमिति मनोगतः, मनोगतत्वं च मनः पर्यवज्ञानित्वम्: तच्चमत्त एव भवति। एवम् अजरः नास्ति जरा यस्येति तत्वम्, अघोरः शान्तः, अनुत्तराक्षरः ॐम् इति अर्कमण्डलः- सूर्यमण्डलः, तन्मण्डलगामित्वमुपचारात्। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मण्डलभेदिनौ। परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिहतश्चयः इति योगीत्यर्थः। आद्यः-सर्वप्रथमः, कालरात्रिः प्रलयः, केशवः विष्णुः सर्वव्यापक इत्यर्थः, निवृत्तिः, रतिः, विघ्नपः, प्रियंवदः, इत्यादयोऽपि मत्त एव। तदनुगताश्च भवार्थाः स्वयमुन्नेयाः, विस्तरभयान्नस्फुटीक्रियन्ते॥ इति॥

सिद्ध और अपने अभिमत को प्राप्त इत्यादि का प्रादुर्भाव मुझसे ही है। इसका अभिप्राय यह है कि मेरी कृपा से ही मोक्ष होता है। अथवा अम् का अर्थ ब्राह्मण है। ब्रह्म का अर्थ वेद, तत्वज्ञान, अथवा परमात्मा है, जो उस ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है। ब्रह्मज्ञान मुझ से ही होता है। अथवा सबसे श्रेष्ठ जो है उसको ब्राह्मण कहते हैं, विराटस्वरूप परमात्मा का मुखरूप मुझसे ही उत्पन्न होता है। अथवा अम् का अर्थ मनोगत है मनमें रहने वाले ज्ञान को मनोगत कहते हैं। वह मुझ से ही है। इसीप्रकार जो वृद्ध नहीं है उसको अजर कहते हैं, अघोर शान्त को कहते है। नहीं है उत्तर जिसमें ऐसा ॐ सूर्य-मण्डल है। सूर्यमण्डल का अर्थ उपचार से सूर्यमण्डल में गमन करने वाला है। सूर्यमण्डल में गमन करने वाले दो पुरुष इस संसार में हैं। एक तो योगीमहात्मा और दूसरा धार्मिक युद्ध में मरने वाला वीर योगी। इन दोनों में योगी महात्मा सर्व श्रेष्ठ है। कालरात्रि प्रलय को कहते हैं। केशव सर्वव्यापक विष्णु भगवान् को कहते हैं। निवृत्ति

पुनस्त्राणाय स्वभक्तान् तत्वस्वरूपमवगमयन्ती कथयति—

यस्तानित्वं तारणमयं भवभयनाशं भावय हे।

स्वभावशरणगतं प्रणवजासनं भवानिभवं भवभयनाशनं हे ॥ ४ ॥

यस्तानित्वमिति। हेभक्तजनाः यस्तानित्वं; तारणमयम् अयं भावः यसु प्रयत्ने। यस्यते इति योः,-प्रयत्नः, भावे क्विपः तनितुं विस्तारयितुं शीलमस्येति तानी, संसारः। संसार एव जीवमनेकजन्मद्वारा विस्तारयति, बहुकालपर्यन्तं स्थापकत्वाद् विस्तारयतीति व्यवहारः। तयोर्द्वन्द्वः, तस्यो-र्भावः, यस्तानित्वम्, प्रयत्नत्वं संसारत्वं च तारणमयंतारणंस्वरूपम्। यदि संसारो न स्यात् तर्हि जीवस्य मोक्ष एव न स्यात्। संसारे समागतस्यैव जीवस्य स्वकर्मभोगात् चित्पातादिष्ठ सद्गुरुप्रयत्नात् स्वशुभानुष्ठानाच्च तारणमय-त्वम्। एवं च प्रयत्नत्वं संसारत्वं च तारणमयमिति फलितोऽर्थः अतः भवभयनाशं भावय।

रति को कहते हैं। विघ्नप का अर्थ प्रिय बोलने वाला है। यह सब मुझ से ही उत्पन्न हैं। अजर आदि शब्दों का भावार्थ स्वयं जान लें। विस्तार होने के कारण इनका अर्थ विस्तृत नहीं किया है ॥ ३ ॥

फिर अपने भक्तों के उद्धार के लिए सत्वस्वरूप का ज्ञान कराती हुई माता कहती है-यस्तानित्वम्-इत्यादि-हे भक्तजन! यस्तानित्वं तारण-मयम्—इसका अर्थ इस प्रकार है कि यसु प्रयत्ने धातु से यस्यते इस विग्रह से भाव में क्विप् प्रत्यय कहने पर यः सिद्ध हुआ, और य का अर्थ प्रयत्न हुआ। विस्तार करना जिसका स्वभाव है उसको तानी कहते हैं। तानीका अर्थ संसार हुआ। संसार ही अनेक जन्मों द्वारा जीवों का विस्तार करता है। बहुत कालपर्यन्त स्थापन करके विस्तार करता है। यः, और तानी का द्वन्द समास करके भाव अर्थ में तद्धित से त्व प्रत्यय किया फिर 'यस्तानित्वम्' सिद्ध हुआ। प्रयत्न और संसार तारण स्वरूप है। यदि संसार न हो तो जीव को मोच ही नही होवे। संसार में आये हुए जीव काही अपने कर्मों के भोग से, अपने

यद्वा, यस्यतीति याः। कर्तरि क्विप्। तत्संबुद्धौ हे यः हे प्रयत्नवन् त्वं तानित्वं संसारत्वं, जीवस्य भ्रामकत्वाद् अनेकजन्म-प्रापकत्वात् तानित्वं कर्म वा भवभयनाशं तारणमयं भावय। कथं संसारभयनाशो भवेत इत्यादि तारणमयं तारकं गौतमबुद्ध-वत् भावय। यथा उत्कटभावनया गौतमस्य हृदि स्वयमेव चित्प्रकाशः संजातः, तथैव भवभयनाशं भावयतस्तवापि हृदि भावनया चित्प्रकाशो भविष्यति। इति भवभयनाशभावनं तारणमयं मोक्षप्रापकमि तापदेशः।

अथ पुनस्तदेव दृढयति। हे जीव! भवभयनाशनं भवस्य संसारस्य भवस्य भीतेर्नाशनं विनाशकत्वम् स्वभावेन स्वस्य भावेन भावनया शरणगतम्, रक्षकत्वेन प्राप्तम्। भवभयनाशनं जीवस्य-

---

अच्छे अनुष्ठानों से और अच्छे गुरू की कृपा से आत्मज्ञान होने पर उद्धार होता है। इसप्रकार अभिप्राय यह है कि प्रयत्नत्व और संसारत्व तारण करने वाले हैं। इसलिए संसार के भय का नाश करने वाले इनको जानो।

अथवा यस्यति विग्रह करके कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय करने से याः हुआ, उसके सम्बोधन में यः सिद्ध हुआ, उसका अर्थ हुआ हे प्रयत्न वाले, आप तानित्वं संसारको, अथवा तानित्व का अर्थ कर्म भी है। जीव को अनेक जन्म में भ्रमण कराने वाले कर्म को संसार के भय को नाश करने वाला तारणमय समझिए। कैसे संसार का भय नाश हो यह तारने वाले गौतमबुद्ध के समान समझिए। जैसे कि उत्कट भावना से गौतमबुद्ध के हृदय में अपने आप आत्मज्ञान हुआ, वैसे ही संसार के भय को नाश करते हुए तुमारे हृदय में भी भावना से आत्मज्ञान हो जायगा। इस प्रकार संसार के भय को नाश करने वाला और मोक्ष देने वाला तानित्व है। फिर इसी बात को माता पुष्ट करती है, 'भवभय नाशनम्' इत्यादि। संसार के भय को नाश करने

मोक्षजनकत्वात् दुःखादिभ्यो रक्षकम् । अथवा भवभयनाशनं स्वभावेन प्रकृत्यैव शरणेषु शरणमापन्नेषुगतं प्राप्तमस्ति भवभयनाशं भावयतः पुरुषस्य भवभयनाशनं स्वत एव प्राप्नोतीत्यर्थः । अथ पुनर्भवभयनाशनं विशिनष्टि । भवानिभवम्, भवं संसारमुत्पत्तिं वा आनयति जीवयति इति भवानि कर्म ततः भवः उत्पत्तिर्यस्येति । सद्गुरुसेवया तत्कृपाकटाक्षतः योगाभ्यासाद् वा भवभयनाशभावनया चित्पाताद्वा एवंविधेभ्यो ऽन्येभ्यो वा कर्मभ्यो भव उत्पत्तिर्यस्येत्यर्थः । एवंविधेभ्यः कर्मभ्यो भवभयनाशःसमुत्पद्यते । इति तदाशयः । ननु कर्मणां संसारजनकत्वात्, अनेकजन्मोत्पादकत्वाच्च कथमिव तन्नाशकत्वमुपपद्यते इति चेत्सत्यम्, असत्कर्मणां द्रव्याश्रितानां च कर्मणां संसारजनकत्वमस्ति नतु चित्पातप्रकाशादिकर्मणां कथमिव

वाली, अपनी भावना से शरण में आये हुए जीवों को मोक्ष देकर रक्षा करने वाली है । अथवा स्वभाव से ही शरण में आये हुए जीवों को शरण देने वाली माता है । संसार के भय को नाश जानने वाले पुरुष को संसार भय का नाश स्वतः प्राप्त हो जाता है । इसके अनन्तर फिर संसार के भय के नाश को माता विस्तार करती है, 'भवानि भवम्' भव संसार अथवा उत्पत्ति को जो आनयति जीवित रखती है उसको भवानि कर्म कहते हैं । उससे उत्पत्ति है जिसकी उसको भवानिभव कहते हैं । अच्छे गुरु की सेवा से और कृपा से योगाभ्यास से अथवा संसार के भय के नाश की भावना से आत्मज्ञान होने से अथवा इस प्रकार के किसी अन्य कर्मों से उत्पत्ति है जिसकी. उसका इस प्रकार के कर्मों से संसार के भय का नाश हो जाता है, यह इसका अभिप्राय है । कर्म ही संसार को उत्पन्न करने वाले और अनेक जन्म देने वाले हैं यह तो निश्चय ही है तो कर्मों से कैसे संसार के भय का नाश हो सकता है यह शंका आपके मन में हो तो सुनिए । बुरे कर्म और द्रव्य के आश्रय पर होने वाले कर्म संसार के जनक हैं, किन्तु

संसारनाशो भवेदिति भावनादिकर्मणां वा पुनर्जन्मजनकत्वम्, निराश्रितत्वेन पुनर्जन्मजनकत्वाभावात्। अत्र बहुवक्तव्यम्, तच्च प्रकृतानुपयुक्तत्वान्नोच्यते। पुनस्तदेव विशिनष्टि--

प्रणव ज्ञासनमिति। प्रणवाज्जाताः प्रणवजाः वेदाः। ते आसनं स्थानं यस्य तत्। वेदाद् वेदान्ताद् वा समुत्पन्नम् यद्वा प्रणवजानाम् असनं प्रक्षेपरूपम्। वेदैःप्रक्षिप्तमित्यर्थः। असु-क्षेपरस्ये। वेदैः भवभयनाशःक्षिप्यत इति भावः।

यद्वा प्रणवजंप्रणवोत्पन्नम् आसनं स्थानं यस्य तत्। प्रणवो भवभयं नाशयते इत्यर्थः। प्रणवस्मरणचिन्तननिदिध्यासनादिना भवभयनाशो मोक्षो भवतीति प्रणवमेव चिन्तय, ततस्ते मोक्षो भविष्यतीत्युपदेशः।

आत्मज्ञान प्रकाशादि कर्म और संसार का नाश किस प्रकार हो इस भावना से किए हुए कर्म फिर जन्म देने वाले नहीं होते हैं। आश्रय रहित होने पर फिर जन्म नहीं होता है। इस में बहुत बात बताने के योग्य है, किन्तु इसके प्रसंग से बाहर होने के कारण नहीं बताई गई। माता फिर उसी बात को स्पष्ट करती है, 'प्रणव जासनम्' इत्यादि। 'प्रणव' ॐकार से प्रकट होने वाले वेदों को प्रणवजा कहते हैं। वे वेद हैं 'आसन' स्थान जिसके उसको प्रणवजासन कहते हैं। अर्थात् वेद वेदान्तों से उत्पन्न। अथवा 'प्रणवजानम् असनम्' प्रण-जासनम्' असुक्षेपणे धातु से असन होता है। वेदों से प्रक्षिप्त यह अर्थ हुआ। अभिप्राय यह है कि वेदों के द्वारा संसार के भय का नाश होता है। अथवा प्रणव से उत्पन्न स्थान जिसका है उसको प्रणवजासन कहते हैं। प्रणव संसार के भय का नाश करता है। प्रणव के स्मरण चिन्तन और अध्ययन आदि से संसार के भय का नाश होकर मोक्ष होता है। इसलिए प्रणव का चिंतन कर। उससे तुमको मोक्ष प्राप्त होगा यह उपदेश माता करती है।

पुनः स्वभक्तान् उपदिशति ।

हर शरणागतं (भव) तायं विभावतः ममायनं हे ।
यस्तारणं तत्र द्वयरूपं मया हि सर्वाणि स्वरूपमयानि ॥ ५ ॥

हे जीव ! भक्त ! वा शरणागतं शरणेषु गृहेषु भवतां देहरूपगृहेषु आत्मसुवा आगतम्, शरणंगृहरक्षित्रोरि मरः । संसारादुतिमीर्ठाया तवां-त्मरूपगृहमागतम्, जन्ममरणभवादि क्लेशोद्विग्नत्वेनोपासनयातवान्तिकर्मा एवं च गतमित्यर्थः, पाञ्चभौतिकशरीरत्यागानन्तरमपि ममोपिशानया-गतमिति भावः, भवतायम् । तायते इति तायम्; तायु संतानपालनयोः, पालनार्थात् ताय धातोः कर्तरि अच् । भवस्य संसारस्य उत्पन्नस्य जीवस्य या तायं पालकम् मम् अयनम् मम पन्थानं विभावनात् आलम्बनविभावनात् प्रत्यासत्त्या ममालम्बनविभावनात्, सद्गुरोरालम्बनविभावद्वा हर प्रापय । त्वमेनंमज्ञानिनं ममागतं प्रापय, अथवा प्रापणायंशे विप्रेणांशत्यागातत्वमे वप्राप्तरीत्यर्थः इत्युपदेशः, अथवा आशिषि तातङदिशस्य वैकल्पिकत्वाद्

श्रीगाता जी फिर अपने भक्तों को उपदेश करती है, 'हरशरणागतम्', इत्यादि । हे जीव ! वा हे भक्त ! 'शरणेषु, आगतं शरणागत, 'शरणं गृहरक्षिभोः, इस अमरकोष से शरण का अर्थ घर है । तो इसका अर्थ यह हुआ कि आपके शरीररूपी घरमें अथवा संसार को पार करने की इच्छा से आपके आत्मारूपी घर में प्राप्त हो संसार के जन्म मरण आदिक भयों से दुःखित होकर उपासना के द्वारा आपके समीप यह जीव आया है । इस प्रकार पाञ्चभौतिक शरीर को त्यागने के अनन्तर भी मेरी उपासना से यह जीव आता है । 'भवतायम्' ताय सन्तान-पालनयोः, धातु से कर्ता अर्थ में अच् प्रत्यय करने से 'तायम्' सिद्ध होता है । संसार अथवा उत्पन्न हुए जीव का पालन करने वाले 'ममायनम्' मेरे मार्गको 'विभावतः' प्रत्यसत्ति न्यायसे मेरे आश्रय को लेकर अथवा अच्छे गुरु के आश्रय को लेकर 'हर' जीव को प्रेरित कर । अर्थात् तुम इस अज्ञानी को मेरे मार्ग

पक्षे हर, हरतादित्यर्थः । ततश्चायमर्थः । मम विभावतः ममालम्बनात् ममायनं मम प्राप्तिमार्गमवश्यमेव हरतात्, इति वरप्रदानरूपमाशीर्वचनम् । ममालम्बनादवश्यमेव मम प्राप्तिमार्गं प्रापयिष्यसिवे यर्थः । एतदनुसृतमेव गीतायामप्युक्तम् । यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्, मन्मना भवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु इत्यादि । अथ पुनरवगमयति यस्तारणमिति । योऽहंतारणं तारणस्वरूपेण ब्रह्मरूपतया विद्यमानम्, तारणत्वकथनेन मीमांसकानां निरासः, नहि ते मोक्षं तारकं वा ईश्वरं वा मन्यन्ते । यः ईश्वरः, तारणं तारणस्वरूपम् । ल्युडन्तत्वान्नियतनपुंसकत्वम् । तारणस्य हेतुभूतमित्यर्थः । अथवा यः पुरुषोत्तम ! तारणं तारणक्रियाभूतम्, तारणक्रियाक्रियावतोरतिशयत्वबोधनाय अभेदोपचारः, अथवा तारणकर्मणोऽतिशयत्वबोधनाय तद्वतिलक्षणा । एवं च यस्तारणक्रियावान् ईश्वरोऽहम्, तत्र द्वयरूपम् । द्वयंरूपम् । रूपं स्वरूपं सिद्धान्त इत्यर्थः,

---

में भेजो । अथवा पहुँचाने में प्रेपण अंशको त्यागने से तुमही मेरे मार्ग में पहुँचो यह अर्थ होता है । अथवा आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार में वैकल्पिक तातङ् के अभाव में हर होता है, तो यह अर्थ हुआ कि मेरे आश्रय से मेरे मार्ग को अवश्य प्राप्तकर, यह वरदान रूप आशीर्वाद माता देती है । भाव यह है कि मेरे आश्रय से अवश्य ही मेरे मार्ग में पहुँच जायगा । इसके अनुसार ही गीता में भी लिखा है । हे अर्जुन ! तू जो कुछ करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो देता है, जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर । मेरे में मन लगाने वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा करने वाला, और मेरे लिए नमस्कार करने वाला हो ।

फिर भी माता ज्ञान कराती है, 'यस्तारणम्' इत्यादि । जो मैं तारण करने से ब्रह्मस्वरूप हूँ उसमें दो स्वरूप हैं । तारण कहने से मीमांसकों का मत परास्त हो जाता है, वह मोक्ष को और तारण करने वाले ईश्वर को नहीं मानते हैं । तारण, ल्युट्प्रत्ययान्त होने से

द्वयं च तद्रूपम्, विशेष्यविशेषणभावेन कर्मधारयः। अथवा। प्रशंयां रूपम्। प्रशंसितं द्वयम्, श्रेष्ठम्, तत्तत्सैद्धान्तिकैर्युक्तितया समर्पितं प्रकारद्वयमस्ति। अथवा यः प्रयत्नवत् प्रयत्नसाध्यं तारणं संसारः तत्र तस्मिन् विषये द्वयरूपम् श्रेष्ठप्रकारद्वयमस्ति। संसारस्य तारकत्वं प्रयत्नवत्वं चेति पूर्वमुक्तम्। अथ तद्रूपद्वयं दर्शयति। मया हि सर्वाणि। सर्वाण्यपि वस्तूनि मया समुत्पादितानीत्यर्थः। मयैव हि सर्वः संसारः समुत्पाद्यते। द्यावाभूमी जनयन् देव आस्ते' इत्यादि वैशेषिकनैयायिकादिभिः समर्थितम्। एवं च परब्रह्मपरमात्मनः सर्वं समुत्पन्नमिति। अथ द्वितीयं प्रकारं दर्शयति। स्वरूपमयानि। सर्वाण्यपि वस्तूनि ममैव स्वरूपमयानि। सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' इति मत्स्वरूपमेव सर्वम्। अहमेव सर्वम्। न किञ्चिदपि मद्भिन्नमिति तदाशयः। ननु भगवतःपरब्रह्मणो ज्ञाने वस्तुस्थित्यवगमे च एक एव प्रकारः कथमिह प्रकारद्वयं दर्शितमिति चेत्सत्यम्।

नियत नपुंसक लिङ्ग है। अथवा जो ईश्वर तारण स्वरूप है, यह तारणम् का अर्थ है। तारण क्रिया और तारणक्रिया वाले का अतिशय ज्ञान करने के लिए अभेद का उपचार किया है। अथवा तारण क्रिया के अतिशय ज्ञान के लिए तारणक्रिया वाले में लक्षणा है। इसप्रकार जो तारणक्रिया वाला ईश्वर मैं हूँ, उसमें दो रूप हैं। रूप स्वरूप को कहते हैं, स्वरूप का अर्थ सिद्धान्त है। द्वयं च तद्रूपं इस में विशेष्य विशेषण भाव होने से कर्मधारय समास है। अथवा प्रशंसा अर्थ में द्वय शब्द से रूपप् प्रत्यय होने पर द्वयरूपम्-होता है। उन उन सिद्धान्तों को मानने वालों ने युक्ति पूर्वक दो सिद्धान्तों का समर्थन किया है। अथवा जो प्रयत्न साध्य संसार है उसमें श्रेष्ठ दो मार्ग हैं, एक तो संसार का तारक और दूसरा प्रयत्न वाला, यह पूर्वही कहा गया है।

इसके अनन्तर माता उन दो सिद्धान्तों को बताती है, 'मयाहि सर्वाणि' इत्यादि। संपूर्ण वस्तु मैंने ही उत्पन्न की हैं और मुझसे

सर्वसाधारणप्राकृतजनानां वेदान्तसिद्धान्तस्य दुरवगमत्वाद् आदौ वैशेषिकपौराणिकादि प्रसिद्धरीत्या तथादर्शितम्, लोके हि तथैव जनानां व्यवहारः । "उपायाःशिक्षमाणानां बालनामुपलालनाः । असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते" नैतावता हितवतां शिक्षकाणां तस्य जनकादीनामसाधुत्वं केनाप्युच्यते । एवं च पौराणिक वैशेषिकादिभिरुपवर्णितं मया हि सर्वाणि इति प्रकारं प्रदर्श्य करुणाय सर्वान् स्वोन्मुखीकृत्य वेदान्तसिद्धान्तं दर्शयति, स्वरूपमयानीति । एतेन ब्रह्मभूता ब्रह्मस्वरूपैवाहमिति आत्मस्वरूपमपि प्रबोधितमिति, ब्रह्मभूतां प्रत्यक्षतया विद्यमानां मां संसारोत्तितीर्षया समुपास्स्व एवं च तवास्मिन्नेव जन्मनि संसार बन्धान्मोक्षो भविष्यतीति तदुपदेशः । वस्तुतस्तु भक्तिमार्गं ज्ञानमार्गं चेति द्वयमपि मम प्रापकं मोक्षजनकमिति यथेच्छं समालम्ब्य समुपास्स्वेति तदुपदेशः ।

ही संपूर्ण संसार उत्पन्न है । स्वर्ग और मर्त्यलोक को उत्पन्न करता हुआ देव एक है, इत्यादि वैशेषिक, नैयायिकों ने भी माना है । इस प्रकार परब्रह्मपरमात्मा से सब उत्पन्न हैं । इसके अनन्तर दूसरे मार्ग को माता बताती है, स्वरूपमयानि, इति । संपूर्ण वस्तु मेरा ही स्वरूपमय है । निश्चय ही यह सब ब्रह्ममय है भिन्न कुछ नहीं है, इस प्रकार सब मेरा ही स्वरूप है, और मैं ही, सर्वमय हूं । मुझसे भिन्न कुछ नहीं है । निश्चय ही यह सब भगवान् परब्रह्म के ज्ञान में और वस्तु स्थिति के ज्ञान में एक ही प्रकार कैसे हो सकता है, इसलिए दो प्रकार बताए हैं । ऐसी शंका आपकी हो तो उत्तर सुनिए । सर्व साधारण मनुष्यों को वेदान्त के सिद्धान्त का ज्ञान एकदम नहीं हो सकता इसलिए पहिले वैशेषिक और पौराणिक रीति से दो प्रकार बताये हैं । क्योंकि इसी प्रकार लोक में व्यवहार देखा जाता है । जैसे कि बालकों को अविनाशी सत्य शब्द ब्रह्म ज्ञान कराने के लिए रेखागवय न्याय से पहिले असत्य अकारादि वर्णों का ज्ञान कराया जाता है तदनन्तर उसको सत्य शब्द

अथ पुनः जनान् तारयितुमुपवर्णयति ।

मया हि सर्वः मया हि सर्वशरणं हे दासनित्यम् ।

प्रणवश्रुत कारणं महामायामहाभावमयमय हे ॥ ६ ॥

हे जीव ! भक्त ! वा मया हि सर्वः, हि इति एवकारार्थे, सर्वोऽपि संसारः मयैव समुत्पादितः, अस्मत्त एव सर्वं समुत्पद्यते इति तदाशयः । मया हि सर्वशरणम्, हि इति निश्चये । निश्चयतो मया सर्वेषां रक्षणं भवति । नह्यत्र कश्चिदपि संदेहः कर्तव्यः । आपाततःसर्वेषां रक्षणं मया संपद्यते, परं तु दासस्य नित्यं निश्चयतया सार्वकालिकं रक्षणं भवति । दीयतेऽस्मै इति दासो ब्राह्मणः । एवं च ब्राह्मणानां नित्यं रक्षणं मयभवतीत्यर्थः । इतरजनेभ्यो ब्राह्मणा मे प्रिया, इत्यर्थः । ब्रह्म वेद-स्तदाराधका ब्राह्मणाः, ब्रह्म जानतीति ब्राह्मणाः । अथवा स्वभावतः श्रेष्ठत्वाद् ब्राह्मणानां सदैव रक्षां करोमि । यद्वा दासोऽस्मि तव भक्तो-

---

ब्रह्म का ज्ञान होता है क्योंकि पहिले असत्य मार्ग में स्थित होना पड़ता है, फिर सत्य मार्ग प्राप्त होता है । पहिले असत्य मार्ग में स्थित होने पर शिक्षकादिकों का असाधुत्व व्यवहार नहीं माना जाता है । इस प्रकार पौराणिक और वैशेषिकादिकों से वर्णित 'मयाहि सर्वाणि' यह दो प्रकार बताकर, करुणाभाव से सबको अपनी ओर आकर्षित करके माता 'स्वरूपमयानि इससे वेदान्त के सिद्धान्त को बताती है । इससे ब्रह्म को प्राप्त हुई मैं ब्रह्मस्वरूप ही हूँ' इस प्रकार अपने स्वरूप को भी माता बताती है । संसार को पार करने की इच्छा से प्रत्यक्ष विद्यमान ब्रह्मरूप मेरी उपासना कर, इससे तू इसी जन्म में संसार के बन्धनों से छूटकर मोक्ष हो जायगा । वास्तविक में भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग यह दोनों ही मुझको प्राप्त करने वाले हैं, और मोक्ष को देने वाले हैं, इसलिए इन दोनों में से किसी भी मार्ग को स्वीकार कर मेरी उपासना कर, इसप्रकार माता उपदेश करती हैं ॥ ५ ॥

ऽस्मीत्याद्यनन्यभावनया प्राप्तानां दासानां शरणागतानां सेवकानां सार्वकालिकं शरणम् । अत्र शरणपदं प्रकरणवशात् सम्बध्यते । एतेन दासत्वेन प्रापणमपि मोक्षजनकम्, मम दासो मया रक्षितो मुक्तो भवतीत्यर्थः । एतेन द्वैतमार्गो भक्तियुक्तत्वात्सुकरत्वाच्च सर्वजनसाधारणसाध्यत्वाच्च समादृत्य दर्शितः, मम सन्निधौ समागमान्ममदासस्य स्वत एवाभेदतयाऽवश्यमद्वैतज्ञानं भविष्यतीत्यन्यदेव । भक्तिमार्गेण ज्ञानमार्गेण वा समुपास्स्वेत्युपदेशः ।

अथ दासत्वेन कं समुपास्स्व कथं वेति स्पष्टयति । प्रणवेति । हे जीव ! भक्त ! वा त्वम् अयम्-शुभावहम्, यतो नियमतः शुभं भवति । अथच प्रणवश्रुतकारणम् , प्रणवस्य ॐकारमन्त्रस्य श्रुतानाम् ऋग्यजुःसाम्नां च कारणम् । अयमाशयः, प्रणवः सर्वस्यकारणम् , परं महामायामहाभावस्तु प्रणवस्यापि कारणम् , तथा श्रूयते इति श्रुतम्

इसके अनन्तर माता फिर मनुष्यों को तारने की इच्छा से उपदेश करतीं है, 'मयाहि' इत्यादि, । हे जीव ! अथवा हे भक्त ! मैंने ही संपूर्ण संसार उत्पन्न किया है । निश्चय से मैं ही सब की रक्षा करती हूं । इसमें किञ्चित भी संदेह नहीं करना चाहिए, सब प्रकार से सबकी रक्षा मैं ही करती हूँ, किन्तु अपने भक्त की नित्य निश्चयरूप से सदाही मैं रक्षा करती हूँ । जिसको दान दिया जाय उसको दास कहते हैं, इसलिए दास ब्राह्मण को कहते हैं । इस प्रकार ब्राह्मणों की मैं सदा रक्षा करती हूँ । और मनुष्यों की अपेक्षा ब्राह्मण मुझको अत्यन्त प्रिय हैं । ब्रह्म वेद को कहते हैं उसको पढने वाले ब्राह्मण हैं, इसलिए जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है । अथवा स्वभाव से ही श्रेष्ठ के कारण ब्राह्मणों की मैं सदा रक्षा करती हूं । अथवा आपका दास हूँ भक्त हूँ इत्यादि अनन्य भावना से जो भक्त मेरी शरण में आते हैं उनको मैं सदा शरण देती हूँ । इस लिए यह निश्चित है कि अपने भक्त की मैं रक्षा करती हूं, और उसको मोक्ष देती हूं । इससे द्वैत मार्ग भक्ति

परंपरया श्रूयते।एव न तु केनाप्युच्यते, एवं च निरपेक्षोऽवः श्रुतिः। इति श्रुतस्य श्रुतिरूमानार्थत्वमवगन्तव्यम्। ततश्चायमर्थः प्रणवस्य श्रुतानां च कारणम्। तेषामपि समुद्भावकम्। अत्रेदं हृदयम्, वेदमन्त्राणां तपश्चर्यया ऋषयो द्रष्टारो भवन्ति। तत्र महामायामहाभावात्तेषां हृदि चित्पातः संजायते ततश्चाज्ञानतिमिरनाशान्मन्त्रस्यानुपूर्वी तेषां हृदि समुद्भासते इति तां यथानिर्दिष्टां हृदि वर्णानुपूर्व्या प्रकाशितां तां तथैवोपवर्णयन्ति। तद्वर्णानुपूर्वीरूपमन्त्रस्य महामायामहाभावात् समुत्पन्नत्वादपौरुषेयत्वम्, एवं च प्रणवस्य अपौरुषेयश्रुतीनां वेदानां च कारणं तदुद्भवने हेतुर्महामायामहाभाव एव तम्, अय गच्छ। अयमाशयः। महत्यश्च ताः मायाःमहामायाः, आद्यात्रिपुरसुन्दर्यादयः। अथवा महती चासौमाया महामाया। अनिर्वचनीया चिदन्तःपातजनिका काचिच्छक्तिस्वरूपा तस्यां महाभावम्, नतु

युक्त, सरल, और सर्वसाधारण के द्वारा साध्य होने से आदर पूर्वक बताया। मेरे समीप आने से मेरे दास का स्वयं ही अभेदता से अवश्यमेव अद्वैत ज्ञान होगा। अभिप्राय यह है कि भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग से मेरी उपासना कर। इसके अनन्तर अपने को भक्त मान कर किसकी उपासना करे और किस प्रकार करे यह माता स्पष्ट करती है, प्रणव इति। हे जीव! वा हे भक्त! तू इस शुभ मङ्गलमन्त्र को स्वीकार कर, जिससे नियमानुकूल शुभ होता है, और प्रणवश्रुत का कारण है। प्रणव, ॐकार और श्रुत जो ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद हैं उनका कारण है यह अभिप्राय है। आशय यह है कि प्रणव सबका कारण है, परन्तु महामाया का महाभाव तो प्रणव का भी कारण है। जो सुना जाय उस को श्रुत कहते हैं, परम्परा से सुना जाय, किसीसे कहा न जाय। इस प्रकार निपेक्ष शब्द को श्रुति कहते हैं। इससे श्रुतका श्रुति के समान अर्थ जानना चाहिए। तो यह अर्थ हुआ कि प्रणव और श्रुति

सामान्यभावमित्यर्थः। एवं च तत्र महाभावेनावश्यमेव त्ते मोक्षो भविष्यति। स च महामायामहाभावः श्रयःशुभावह एवेति पूर्वं व्याख्यातमेवेति, त्वं महामायामहाभावम् श्रय। श्रयेति रूपम्, इट किट कटी गतावित्यत्र प्रश्लिष्टस्य इधातोः, अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्, चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकादित्यात्मनेपदविधिमनित्यमाश्रित्यावगन्तव्यम्। एवं च उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा' उदयति विततोर्ध्व-रश्मिरज्जाविति माघोक्तमपि संगच्छते। इति।

अथ पुनस्तदुपदिशति।

मम भो भक्तौ तरणं मामम सर्वमयं हे।
यस्यारुद्ररुद्रत्वं प्रणवे रां ऋं कृतकारणं रुद्रं नौमि ॥ ७ ॥

भो इति संबोधनम्, भवच्छब्दस्य प्रथमाद्विवचनम्, त्यदादीनां संबोधनं नास्तीति प्रायिकम्, हे सः इति भाष्यप्रयोगदर्शनात्, यद्वा

का भी कारण महामाया सत्व है। उनको प्रकट करने वाला है। इस में रहस्य यह है कि तपस्या के द्वारा ऋषि मन्त्रों का ज्ञान करते हैं। उसमें महामाया के महाभावसे उन ऋषियों से मनमें आत्मज्ञान होता है। तदनन्तर अज्ञान रूपी अन्धकार के नाश होने से आनुपूर्वी मन्त्र उनके हृदय में भासमान होता है। इस प्रकार आनुपूर्वी वर्णों से युक्त मन्त्रों के द्वारा हृदय में प्रकाश को प्राप्त हुई जैसी वह है उसी प्रकार उस महामाया के सत्व का वर्णन ऋषि करते हैं। वह वर्णों से आनुपूर्वी वह मन्त्र महामाया के सत्व से उत्पन्न होने से अपौरुषेय है। इस प्रकार अपौरुषेय श्रुति रूपवेद प्रणव से प्रकट हैं, और वह प्रणव महामाया के महासत्व प्रकट है। इस लिए उस महामाया के सत्व को प्राप्त करो। आशय यह है कि बड़ी जो वे माया हैं उसको महामाया कहते हैं। वे महामाया आद्या त्रिपुरसुन्दरी आदि हैं। अथवा बड़ी जो वह माया है उसको महामाया कहते हैं। यह आत्मा के अन्दर से प्राप्त होने वाली कोई शक्ति स्वरूपा है। उस महामाया में जो महाभाव

आदरार्थको भोस् इति सान्तो निपातः, भो देवाः, भो लक्ष्मि, भो विद्वद्वृन्द इत्यादि यथा एवं च। भोः भोस् भगोस् अधोस् इति सान्ता निपाताः। हे भवन्तौ युवां ममभक्तौ स्थः। कर्ममार्गेण भक्त्येत्यर्थः, ज्ञानमार्गेण वा समुपासमानौ मम भक्तौ एव। अयमाशयः, द्वैताद्वैतमार्गावलम्बिनौ मम भक्तावुभावपि स्तः। द्वैतमार्गेण नवविधभक्त्या समुपासमानो ममभक्त इत्यत्र न काचिदपि विप्रतिपत्तिः, अद्वैतमार्गेणापि मया सहाभेदमापत्स्यमानः अहमेवास्मीति समुपासमानो मम भक्त एव। एवं च मार्गद्वयमध्येऽन्यतराऽन्यतरमार्गावलम्बिनौ महाभावयुक्तावुभावपि मम भक्तावेव। अथ तन्मार्गावलम्बिनौ स्वभक्तावुक्त्वा सामान्यतः समुपदिशति। तरणमिति हे भक्त! जीव! वा, त्वं सर्वमयं सर्वस्वरूपं साकारमवताररूपेण समुपस्थितं रामकृष्णदेवादिस्वरूपमीश्वरम् अथवा निराकारं सर्वमयं ब्रह्मस्वरूपम्,

---

उसको महामाया महाभाव कहते हैं। इस प्रकार उस महामाया में महाभाव होने से अवश्य तुम्हारा मोक्ष होगा। वह महामाया का महाभाव प्राप्त होने पर शुभ कामना देने वाला है, इसलिए उसको प्राप्त करो, कटी गतौ धातु में इ धातु का प्रश्लेष करके अय सिद्ध होता है। चक्षिङ् धातु में ङित्करण ज्ञापन से अनुदात्तेत्व मानकर आत्मनेपद अनित्य है। इसलिए 'उदयतिदिशियस्याम्' "उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जौ" इत्यादि वाक्यों में उदयति यह माघकवि की उक्ति भी संगत होती है॥ ६॥

इसके अनन्तर फिर श्रीमाता वही उपदेश करती है 'मम भोभक्तौ' इत्यादि। भो यह संबोधन है। भवत् शब्द का प्रथमा का द्विवचन है। त्यदादिकों को संबोधन नहीं होता हैं, यह निश्चित नहीं है। इस की अनित्यता में प्रमाण 'हेस्मः' यह भाष्य प्रयोग है। अथवा आदर अर्थ में भोस् यह सकारान्त निपात है। जैसे भोदेवाः, भोलक्ष्मि, भोविद्वद्वृन्द, यहां भोस् आदरार्थ में है। इस प्रकार भोस् भगोस् अघोस्

तरणम् तरणक्रियास्वरूपम्, यद्वा तरणम्-तीर्णः पुरुषो मामेव गच्छतीति तरणक्रियाया स्थानस्वरूपम् । माम् अम-गच्छ । अथवा अम गत्यादिषु, इत्यत्र आदि ग्रहणात् प्रापणादयो यथावसरमर्थाः समुन्नेयाः ततश्च अकथितंचेति सप्तम्यर्थे द्वितीया । एवं च सर्वमये सर्वस्वरूपे मयि तरणम् अम, मयि तरणं प्रापय मय्येव तीर्णः सन् प्राप्नुहीत्यर्थः । तेन उभयोरपि भक्तयोः सायुज्यमुक्तिः प्रदर्शिता । अथवा सर्वमये मयि-तरणम् अम नयेत्यर्थः सर्वमयत्वेन मां समुपासमानस्त्वं तरणं नयेत्यर्थः । एवं च सर्वं मयत्वेन समुपासमाने सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेत्याद्यद्वैतमार्गावलम्बिनि सायुज्यमुक्तिः प्रदर्शिता, अन्यत्र सामीप्यादिमुक्तिरिति । अथवा अम गत्यादिषु इत्यत्र आदि ग्रहणात्, अवधातुवद् अवगतिरर्थः । ततश्चायमर्थः, सर्वमयं मां तरणम्

यह सकारान्त निपातन हैं । आप दोनों मेरे भक्त हैं । अर्थात् कर्ममार्ग से उपासना करने वाले और ज्ञानमार्ग से उपासना करने वाले दोनों ही मेरे भक्त हैं । अभिप्राय यह है कि द्वैत, और अद्वैत मार्ग को जानने वाले दानों मेरे ही भक्त हैं ।

द्वैतमार्ग से नौ प्रकार की भक्ति के द्वारा उपासना करने वाला मेरा भक्त है इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है, किन्तु अद्वैत मार्ग से उपासना करने वाला भी मेरे साथ अभेद को प्राप्त होकर मैं ही हूँ यह उपासना करता हुआ मेरा ही भक्त है । इस प्रकार दोनों मार्गों मे किसी भी मार्ग को मानने वाला महाभाव से युक्त दोनों ही मेरे भक्त हैं । इसके अनन्तर द्वैत और अद्वैत मार्ग को मानने वाले अपने भक्तों को बताकर सामान्य रूप से माता उपदेश करती है तारणमिति । हे भक्त! अथवा हे जीव! तू सर्वमय सर्वस्वरूप साकार अवतार रूप से उत्पन्न राम कृष्ण आदि स्वरूप से ईश्वर को अथवा निराकार सर्वमय तरणक्रिया स्वरूप ब्रह्म को अथवा संसार सागर को पार करता हुआ मुझकोही प्राप्त कर । यह तरणं के अर्थ है । 'मामम' यहांपर माम्-अम-

अम-अवगच्छ जानीहीत्यर्थः। अथ तारणाय मन्त्रं स्वप्रभावपूर्वकं समुपदिशति। यस्याः क्रीम् एतत्स्वरूपायाः अथवा क्रीं हुँ ह्रीं एतद्-बीजत्रयस्वरूपायाः यद्वा द्वात्रिंशत्यक्षरात्मिकायाः प्रणवे ॐ इति आद्याक्षरे आरम्भिक प्रणव मात्रेऽपि रूद्रस्य रुद्रत्वमस्ति किमिति पूर्णमन्त्रे वक्तव्यम्। अथवा यस्याः क्रीँ इति प्रणवे रुद्रस्य रुद्रत्वम्। अयमाशयः। क्रीँ इति मम प्रणवं मन्त्रं समुपासमानः रुद्रः रुद्रत्वं सर्वातिशायिनीं शक्तिं प्राप्तवान्, यथा सकलमपि चराचरं क्षणेन भस्मसात् कर्तुं प्रभवति। रुद्रस्य रुद्रत्वं मम प्रणवादेव प्रभवति अथवा यस्य परब्रह्मपरमात्मस्वरूपस्य प्रणवे ॐ इत्यस्मिन् अरुद्रस्य रुद्रत्वमस्ति। यद्यपि प्रमात्मकं ज्ञानं तद्वति तत्प्रकार-कतया समुत्पद्यते इति नियमः, तथापि प्रणवप्रभावात् रुद्रातिरिक्ते अरुद्रेऽपि रुद्रत्वं समुत्पद्ये। सर्वोऽपि पुरुषो यथायोगं समुपासमानः

यह छेद है। अम धातु गत्यादि अर्थ में है। आदिग्रहण से प्राप्त करने आदि यथेष्ट अर्थों का ज्ञान भी करलेना चाहिए। इसप्रकार सर्वमयं में अकथितंच सूत्र से सप्तम्यर्थ में द्वितीया है। इसप्रकार सर्वमय सर्व-स्वरूप मुझमें तरण को प्राप्तकर। अभिप्राय यह है कि संसार सागर को पार करता हुआ मुझ में ही लीन होजा। इससे द्वैत और अद्वैत वादी दोनों भक्तों की सायुज्य मुक्ति बताई है। अथवा सर्वमय मुझ में तरण को ले जा, इसका भाव यह है कि सर्वमय मेरी उपासना करते हुए तुम अपनी नाव को पार करो। इसप्रकार सर्वमय भाव से उपा-सना करने वाले 'यह सब ब्रह्ममय है भिन्न कुछ नहीं है, इत्यादि अद्वैत मार्ग वालों की सायुज्य मुक्ति बताई हैं। औरों की सामीप्य मुक्ति बताई है। अथवा अम गत्यादिषु इसमें आदिग्रहण से अवधातु के समान ज्ञान अर्थ है। तो यह अर्थ हुआ कि सर्वमयी मुझको पार करने वाली जानो। इसके अनन्तर पार करने के लिए अपने प्रभावपूर्वक मन्त्रका उपदेश भी माताजी करती हैं। जिसे माता के क्रीं बीज वाले

अरुद्रः सन्नपि रुद्रत्वंप्राप्नोति अयमाशयह। एतत्समुपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति। येन ,वभक्ते च्छिच्छक्तिपातंकर्त्तुं प्रभवति। अन्यदपि रुद्रकरणीयं सदसत् कार्यं कर्तुं प्रभवति। अथ प्रणवोपासको रुद्रत्वमापन्नः सर्वश्रेष्ठो ममापि प्रणम्यो भवतीत्याह रां ॠं मिति। अहं राम् ॠम् एतद्वीजस्वरूपं कृतकारणं रुद्रं नौमि। अयमाशयः। रेफसहितम् ॠमिति बीजस्वरूपम् ॠमित्येतत्स्वरूपं च कृतकारणं रुद्रं नौमि। अथ रामिति वीजस्वरूपार्थं विवृणोति। र इति रोचिष्मान्, अम् इति अनुत्तरम्। ज्योतिष्मन्तं, चित्स्वरूपम्, अनुत्तरम्, परतोऽपि परं ब्रह्मस्वरूपं रुद्रं नौमिति संवन्धः। अथवा र इति रुचिरम्, अम् इति आत्मवीजम्, रुचिरमात्मस्वरूपं रुद्रं नौमि। यद्वा र इति रविः अमिति अमृतम्, रविवत्प्रकाशमानम् अमृतं जरामरणरहितम्। र इति रौरवेशः, अमिति कामरूपः, रौरवाधिपतिम्। जीवानां स्वस्वकृतदुष्कर्मानुरूपेण रौरवादिनरकदुःखदायकं यथेच्छारूपं च रुद्रमिति पूर्वेण संवन्धः। एवम् अमि-

---

अथवा क्रीं हुं ह्रीं इन तीन बीज वाले अथवा बाईस अक्षर वाले मन्त्रके आदि में ॐ इस प्रणव मन्त्र में भी रुद्रका रुद्रत्व है तो संपूर्ण मन्त्र में तो कहना ही क्या है। अथवा जिस माता के क्रीं इस प्रणव में रुद्रका रुद्रत्व है। अभिप्राय यह है कि मेरे क्रीं इस प्रणव की उपासना करते हुए रुद्रने सबसे अधिक रुद्रशक्ति को प्राप्त किया। जिसके द्वारा वह संपूर्ण चराचर को क्षण भरमें भस्म करने के लिए समर्थ होता है। रुद्रका रुद्रत्व मेरे प्रभाव से ही उत्पन्न होता है। अथवा रुद्ररहित जिस परब्रह्म परमात्मा का ॐ इस प्रणव में रुद्रत्व है। यद्यपि उस वस्तु में उस वस्तु का ज्ञान होने से प्रमात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है यह नियम है, तथापि प्रणव के प्रभाव से रुद्र से भिन्न में भी रुद्रका ज्ञान उत्पन्न होता है। लव पुरुष नियमपूर्वक उपासना करते हुए रुद्र न होते हुए भी रुद्रत्व भाव को प्राप्त कर लेते हैं भाव यह है कि इस प्रणव की उपासना करने वाला रुद्रत्वभाव को प्राप्त होता है, जिससे वह अपने भक्तों को आत्मज्ञान करने के लिए समर्थ हो जाता है। और भले बुरे

त्यस्य। कामेशः, कामः, धनेशः, परमः, प्रकाशः, प्रतिपन्नः, प्रियं-वदः, ब्राह्मणः, मनोगतः इत्यादयोऽप्यर्थाः यथासंभवं समुन्नेयाः। पुनः कीदृशं रुद्रमिति विशिनष्टि। ऋम् इत्येतद् बीजस्वरूपम्। ऋमिति रुद्रः सर्वसंसार संहारकारकत्वात् रुद्रः रुद्रस्वरूपः। यद्वा, अतिथीशः अभ्यागतानां प्रभुः। सर्वस्याभ्यागतो गुरुरिति तस्यापि ईशो रुद्रः। अयमाशयः। अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स्वकीयं दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति" इति यद्यपि मनुवचनमतिथिसत्काराय प्रयोजयति तथापि एतन्मन्त्रोपासकानामतिथीशप्रणतानां कृते न किं-ञ्चिदपि प्रायश्चित्तं विधत्ते। तम् सर्वस्यापि रुद्रो गुरुरिति तात्पर्यार्थः। यद्वा ऋमिति ऊर्ध्वमूर्तिः। ऊर्ध्वंसर्वलोकस्यापि उपरि विद्यमाना मूर्ति-र्यस्य सः। तम् सर्वलोकस्यापि उपरि विद्यमानमिति तदाशयः। अथवा ऋमिति अम्बुदः, अम्बुप्रदातारम्। अवर्षणे यदुपासनाद् वर्षणं

रौद्र कार्य करने के लिए समर्थ हो जाता है। प्रणव का उपासक रुद्रभाव को प्राप्त होकर सर्वश्रेष्ठ होजाता है, और मेरे भी प्रणव के योग्य हो जाता है इसप्रकार श्रीमाता जो कहती हैं।

'रां ऋृं' इत्यादि। मैं रां ऋृं बीजस्वरूप कृतकारण रुद्र को प्रणाम करती हूँ। इसका अभिप्राय यह है कि रेफके सहित अम् इस बीज-स्वरूप, ऋृं इस बीजस्वरूप और संसार के कारण रुद्र को प्रणाम करती हूँ। इसके अनन्तर रां इस बीज के अर्थ का विस्तार किया जाता है। र का अर्थ ज्योति वाला है। जिससे आगे कुछ तर्क नहीं उसको अनुत्तर कहते हैं। र और अम् में सवर्ण दीर्घ होने से रां हुआ। इस का भाव यह है कि प्रकाश वाले चित्स्वरूप और परे से भी परे ब्रह्म-स्वरूप रुद्र को मैं प्रणाम करती हूँ। अथवा र का अर्थ सुन्दर है, और अम् का अर्थ आत्मबीज है। तो यह अर्थ हुआ कि सुन्दर आत्मस्वरूप रुद्र को मैं प्रणाम करती हूँ। अथवा र का अर्थ सूर्य है और अम् का अर्थ असृत है। तब इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य के समान प्रकाश

भवति । रुद्रप्रभावाद् वृष्ट्यवरोधो विहन्यते । स्वभावतो लोपकोपकाराय जलप्रदातारं वा । रुद्रं नौमीत्यर्थः । जलाधीनमेव सर्वमिति तद्दातृत्वात्प्रणम्यत्वमपि तस्य सूच्यते । अथवा ऋमिति । दैवज्ञः । दैवं जानातीति दैवज्ञः, इदमनेन प्रारब्धम् एतदस्य शुभं कर्म । एतदस्य अशुभं कर्म । इति जानाति । तदनुकूलमेव शुभाशुभकर्मफलं ददाति । कर्मफलप्रदाता ईश्वर एवायमिति तदाशयः । एवं च रम् ऋम्, एतत्स्वरूपम्, अथ च कृतकारणम्, कृतस्य विहितस्य संसारस्य कारणम् समुत्पादकम् । येन संसारः समुत्पादितस्तमीश्वरं ब्रह्मस्वरूपं रुद्रं नौमि । एतेन रुद्रस्वरूप ब्रह्मप्रधानभूतस्य अद्वैतमार्गस्य ग्राह्यत्वमादरणीयत्वमपि सूच्यते । ये च रुद्रोपासकास्ते अद्वैतमार्गावलम्बिन एवेति फलितोर्थः ॥ ७ ॥

वाले अजर अमर रुद्र को मैं प्रणाम करती हूँ । अथवा र का अर्थ रौरवनरक का स्वामी है, और अम् का अर्थ कामरूप है । इससे यह अर्थ होता है कि जीवों को अपने अपने बुरे कर्मों के अनुसार रौरवादि नरकों में भेजने वाले अपनी इच्छा के अनुकूल स्वरूप वाले रौरव नरकों के स्वामी रुद्र को मैं प्रणाम करती हूँ । उस प्रकार अम् के कामेश, काम, धनेश, परम, प्रकाश, प्रतिपन्न, प्रियंवद, ब्राह्मण, मनोगत, इत्यादि अर्थों का ज्ञान भी आप यथा संभव करलें । फिर कैसे वह रुद्र हैं इसको श्रीमाता जी बताती हैं कि ऋं बीजस्वरूप हैं कृं यह रुद्र है । संपूर्ण संसार का संहार करने से रुद्र, रुद्रस्वरूप है । अथवा कृं का अर्थ अतिथीश है । अभ्यागतों के स्वामी को अतिथीश कहते हैं । अभ्यागत सबका गुरु होता है । उस अभ्यागत का भी स्वामी रुद्र है ! अभिप्राय यह है कि अतिथि जिसके घर से असन्तुष्ट होकर जाता है, अपने पाप उसके लिए छोड़ देता है और उसके पुण्य अपने लिये लेकर चला जाता है, इत्यादि मनु जी की आज्ञा यद्यपि अतिथि सत्कार के लिए प्रेरणा करती है और अतिथि के रुष्ट होने पर प्रायश्चित्त करना

प्रां वां हां सां ग्रां ह्रीं ग्रं भावमयं हे । संसृष्टः प्रणवमयः केशवः । ८ ॥
प्रामिति — हे भक्तः भावमयं भावस्वरूपं प्रां वामित्यादि बीजमयं रुद्रं नौमीति पूर्वेण संवन्धः अथ प्रांवामित्यादिवीजानामर्थमाह-प्रामिति । प्राम् अर्यमा, अर्यमाणं नौमीत्यर्थः, अर्यमत्वकथनेन रुद्रस्य सर्वलोकातिशायि-तेजस्वत्वं ज्ञानप्रकाशदातृत्वं वा सूच्यते । पुनःकीदृशमित्याह, वा मिति वां वीजात्मकम् । वामितिवटुकवीजम् । एतेन शीघ्रप्रसन्नतया यथेच्छवर-दातृत्वं सूच्यते । पुनस्तमेवविशिनष्टि । हामिति । हइति अहमर्थे । अमिति अनुत्तरः । अहंत्वाभिमानयुक्तः अनुत्तरः सर्वोपरिविद्यमानश्च । पूर्वत्र सर्वोपरि विद्यमानत्वं व्यङ्ग्यम् , इह तु अमिति वीजं न वाच्यम् । अहंत्वा-भिमानयुक्तत्वेऽपि अनुत्तरत्वमिति महदेव वैलक्षण्यमस्ति । अथवा ब्रह्मणः स्ताय भिन्नत्वे सोऽहमित्युपासनया ब्रह्मणा सह अभेदमापन्नः अहमेवास्मीति

पड़ेगा, तथापि इस मन्त्रको उपासना करने वाले अतिथीश रुद्र के भक्तों को अभ्यागत के रूप होने पर प्रायश्चित्त करने की कोई आवश्य-कता नहीं है । क्योंकि सब का गुरु रुद्र है । अथवा कूं का अर्थ ऊर्ध्वमूर्त्ति है । सब लोकों से ऊपर विद्यमान है मूर्त्ति जिसकी ऐसे रुद्र को मैं प्रणाम करती हूँ । अथा कूं अम्बुद को कहते हैं । अम्बुद का अर्थ जल देने वाला है । वर्षा न होनेप र रुद्र की उपासना करने से वर्षा होती है । रुद्र के प्रसाद से वर्षा का रुकावट नहीं होता है । इस प्रकार स्वभाव से ही संसार की भलाई करने वाले जल के दाता रुद्र के लिए मैं प्रणाम करती हूँ । यह जगत् जल के आधीन है, उसके दाता रुद्र हैं, इसलिए रुद्र प्रणाम के योग्य हैं । अथवा ऋं का अर्थ दैवज्ञ है । दैव को जो जानता है उसको दैवज्ञ कहते हैं । दैव प्रारब्ध को कहते हैं । यह इसका शुभ कर्म है यह इसका अशुभ कर्म है इस प्रकार जो जानता है, और उसके अनुकूल शुभ और अशुभ कर्मों के फलों को देता है । वह शुभाशुभ कर्मों के फलको देने वाला ईश्वर है । इस प्रकार रां ऋं और कृतकारण ब्रह्मस्वरूप रुद्र के लिए मैं प्रणाम

कोटिं गतः अहं ब्रह्मस्वरूपः अनुत्तरश्चेत्यर्थः। पुनः कीदक्षं रुद्रमित्याह—सामिति। सःकोपस्तत्स्वरूपः, आम् आत्मस्वरूपश्च। कोपःवरूपः आत्मस्वरूपश्चेत्यर्थःतम्। अथवा सःशूलो त्रिशूलवान्, अम् अनुत्तरः आत्मस्वरूपो वा। तम्। यद्वा सः ईश्वरः, ईष्टे इतीश्वरः, सर्वसामर्थ्यवान् तथा अम् अनुत्तरः आत्मस्वरूपों वा तमिति। अथवा साम् गौरीस्वरूपम् गौर्या अर्धाङ्गत्वेन गौरीस्वरूपत्वमवगन्तव्यम्। अथवा सा गौरी लक्ष्मी वा तया सहितः आम् आत्मस्वरूपश्च। समस्तवेदवेदाङ्गादिप्रशस्तविद्यादातृत्वान् प्रचुरतरधनसमृद्धिदातृत्वाद्वा तदयुक्तत्वमवगन्तव्यम्। उक्तो हि एकाक्षर कोशे सशब्दः कोपाद्यर्थे, साशब्दश्च गौर्याद्यर्थे। तथाहि—सःकोपेवरुणे सःस्यात्तथा शूलिनि कीर्तितः। साच लक्ष्मीर्बुधैः प्रोक्ता गौरी साच स ईश्वरः"। पुनः कीदशं रुद्रमित्याह आम्, आमिति बीजस्वरूपम्।

करती हूँ। संसार को जो उत्पन्न करता है उसको कृतकारण कहते हैं। इससे रुद्रस्वरूप ब्रह्मप्रधान अद्वैतमार्ग ग्रहण करने के योग्य है और आदर के योग्य है, यह बात भी प्रकट हो जाती है। जो रुद्रके उपासक हैं वे अद्वैत मार्ग को मानने वाले हैं॥ ७॥

फिर श्रीमाता जी प्रां इत्यादि से श्रीरुद्र का वर्णन करती हैं। हे भक्त! प्रां वां इत्यादि बीजस्वरूप रुद्र के लिए मैं प्रणाम करती हूँ। प्रणाम का संबन्ध पूर्वकारिका से है। इसके अनन्तर प्रां वां आदि बीजों के अर्थों को कहते हैं। प्रां का अर्थ अर्यमा है, अर्यमास्वरूप रुद्रको मैं प्रणाम करती हूँ। अर्यमा कहने से सबसे अधिक तेजस्वी, ज्ञान और प्रकाश को देने वाले रुद्र हैं यह बात प्रकट होती है। फिर कैसे रुद्र हैं कि वां बीजस्वरूप हैं। वां यह बटुक बीज हैं। इससे शीघ्र प्रसन्न होकर इच्छा के अनुकूल वरदेने वाले रुद्र हैं यह बात सूचित होती है। फिर इसी का विस्तार करते हैं कि हां बीजस्वरूप रुद्र हैं। हां में ह अम् यह छेद है। ह का अर्थ अहम् है, और अम् का अर्थ अनुत्तर है इसप्रकार अहंत्व अभिमान से युक्त उत्तर रहित सबसे ऊपर स्थित रुद्र हैं

पूर्ववचने आमिति पितामहाद्यर्थतया स्वातिशयप्रतिपादकम् , इह तु रुद्रस्य-विशेषणमितिभेदः । अथ आमिति बीजार्थतया रुद्रस्यातिशयं दर्शयति । आमिति कामराजः । कामानां राजा कामराजः, राजाह ! सखिभ्यष्टच् । ५।४।६१। इतिटच् । नस्तद्धिते इति टिलोपः । सकलकामानां राजत्वान्मनोरथपूरकत्वमत्रव्यज्यते । अथवा आमिति । आत्मा आत्मस्वरूपः, परमात्मरूपो रुद्रइत्यर्थस्तम् । एतेन व्यापकत्वं सर्वात्मस्वरूपत्वं रुद्रस्य बोध्यते । अथवा आमिति अनन्तेशः अनन्ताधिपतिरित्यर्थस्तम् । अथवा आमिति उमेशस्तम् । उमायाः स्वरूपज्ञानं तन्त्रान्तरादवसेयम् । किञ्चिद्देव्यपराधक्ष-मापणस्तोत्रात्सूच्यते "चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कराठे भुजगपतिहारी पशुपतिः । कपाली भूतेशो भजति जगदीशैक-पदवीं । भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदमित्यादि । तस्या उमाया ईशस्तम् । अथवा आमिति अनङ्गः, लौकिकवाक्पाणिपादाद्य-

---

पहले तो 'सर्वोपरिविद्यमान' व्यङ्ग्यार्थ था, और यहां आम् बीज से वाच्यार्थ हैं । अहंत्वाभिमान से युक्त होने पर भी उत्तर से रहित हैं, यह बड़ी विलक्षणता है । अथवा ब्रह्म से रुद्रभिन्न हैं. और सोऽहं इस उपासना से ब्रह्म के साथ अभेदता प्राप्त हो मैं ही हूँ इसकोटि को पहुंचकर मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ और अनुत्तर हूँ, यह अभिप्राय है । फिर कैसे रुद्र हैं कि सां बीज स्वरूप । स कोप स्वरूप है । आम् का अर्थ आत्मस्वरूप है । कोपरूप और आत्मस्वरूप रुद्र हैं । अथवा स का अर्थ त्रिशूल वाला है, आम् का अर्थ अनुत्तर और आत्मस्वरूप है । अनुत्तर आत्मस्वरूप रूप त्रिशूल धारी रुद्र हैं । अथवा स का अर्थ सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर है, अम् का अर्थ उसी प्रकार अनुत्तर या आम् का अर्थ आत्मस्वरूप हैं । ऐसे रुद्र हैं । अर्थवा सां का अर्थ गौरी स्वरूप है । आधा अंग गौरी का होने से गौरी स्वरूप रुद्र हैं । अथवा सा गौरी या लक्ष्मी को कहते हैं, उनके सहित आत्मस्वरूप रुद्र हैं । संपूर्ण वेदवेदाङ्गादि अच्छी विद्या के दाता होने से, और बहुत धनसम्पत्ति

भावादनन्तत्वम् । तेजः स्वरूपज्योतिष्मयइत्यर्थस्तम् अथवा आमिति । करालः सकलसंसारसंहारकारकत्वेन । दुष्टजनेभ्यः कठोरत-रफलदातृत्वाद्वाऽस्यकरालत्वम् । अथवा आमिति कामदः, सकलम-नोरथपूरकःयत्कृपातःकश्चिदपि मनोरथो फलीभवति । तम् । कामः कामदेवस्त द्यति खण्ड्यतीति कामदः । दो अवखण्डने । इह अवखण्डनं सामान्यतो विनाशनत्वेनावगन्तव्यम् । आदिच उपदेशेऽशिति । ६ । १ ४५० इत्यात्वम् । आतोऽनुपसर्गेकः ।३ । २ । ३ इति कः । आतोलोप इटिच ६-४-६४ इत्याकारलोपः कामदःकामनाशकरम् । शिवस्वरूपस्य रुद्रस्य कामनाशकत्वं पुराणप्रसिद्धम् । अथवा, आमिति वाक्पति विद्याप्रदा ।

आदि के दाता होने से उनसे युक्त रुद्र हैं । एकाक्षर कोप में कहा भी है कि स शब्द कोप अर्थ में है और सा शब्द गौरी अर्थ में है स का अर्थ कोप, वरुण ईश्वर और त्रिशूल धारी है । सा का अर्थ लक्ष्मी और गौरी है । ऐसे रुद्रको मैं प्रणाम करती हूँ । फिर कैसे वह रुद्रहैं कि आम् बीजस्वरूप हैं । पहिले श्लोक में आम् का पिता आदि अर्थ होने से अपने अतिशय को प्रकट करने वाला था, और यहां तो आम् रुद्र का विशेषण हैं यही भेद है । अब आम् बीज के अर्थ से रुद्र के अतिशय को वताते हैं । आम् का अर्थ कामों का राजा है । संपूर्ण कामों के राजा होने से सब इच्छा पूर्ण करने वाले रुद्र हैं यह बात सिद्ध होती है अथवा आम् का अर्थ आत्मा है । ऐसे आत्मास्वरूप रुद्र को मैं प्रणाम करती हूं । इससे व्यापक और आत्मास्वरूप रुद्र हैं यह प्रकट होजाता है । अथवा आम् का अर्थ अनन्तेश है । अनन्त के स्वामी को अनन्तेश कहते हैं । अथवा आम् उमेश को कहते हैं । ऐसे अनन्तेश और उमेश रुद्र को मैं प्रणाम करती हूं । उमाके स्वरूप का ज्ञान तन्त्र-शास्त्रों से जानलेना चाहिए । कुछ देव्यपराधक्षमापण स्तोत्र से जानलें चिता के भस्म को लगाने वाले विप पीने वाले नङ्गे जटाधारी गले में सांपों की माला पहिने पशुओं के स्वामी मुण्डमाला धारण करने वाले

अथवा अमिति शून्यम्, सर्वधारणैर्द्रष्टुमशक्यम्। एवमेव आमित्यनेन गम्या नारायणस्वा-राऽनङ्गरूत् पाशबीज,-कालजिह्वा, कालनिशा पयोदपोशप्रतिष्ठाप्रभाकरमरुदादयोऽर्थाः अवगन्तव्याः, तदनुगतानि विशेषणफलानि तत्तद्भावाथाश्च विस्तरभयान्नोच्यन्ते। अथ पुनस्तमेव रुद्रं विशिनष्टि। कीदृशं रुद्रम्। हीमिति। हि इति निश्चये। ईरिति लक्ष्मीः। ततश्चायमर्थः निश्चयतो लक्ष्मीस्वरूपः सः। एतेन तदुपासनया निश्चयेन लक्ष्मीप्रदत्वं तस्य सूच्यते। पुनः कीदृशम् अमिति बीजस्वरूपम्। अमिति अनुत्तरः सर्वोपरि विद्यमान इत्यर्थः। पूर्वत्र हामिति विशेषणव्याख्यायाम् अभिमानयुक्तत्वेऽपि अनुत्तरत्वम्, इहतु शुद्धःइतिभेदः। पूर्वत्र तृतीयपद्ये अमित्यस्यार्था व्याख्यातास्तत एवा-

---

भूतों के स्वामी शिवजी संसार के स्वामी की पदवी को प्राप्त हैं। हे भवानि! यह फल आप के साथ विवाह करने का है, इत्यादि, उस उमाके स्वामी को मैं प्रणाम करती हूं। अथवा आम् अनङ्ग को कहते हैं। लौकिक वाणी और हाथ न होने से अनङ्ग संज्ञा है। अर्थात् तेजस्वरूप कान्ति वाले रुद्र हैं। अथवा आम् कराल को कहते हैं। संसार का नाश करने से और दुष्टजनों को कठोर दण्ड देने से कराल स्वरूप रुद्र हैं। ऐसे रुद्र को मैं प्रणाम करती हूं, अथवा आम् का अर्थ कामद है जिस रुद्र की कृपा से संपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, एकभी निष्फल नहीं होता है। काम कामदेव को कहते हैं उस को जो नाश करता है वह कामद रुद्र हुए। सामान्य खण्डन अर्थ वाली दो धातु से 'आतोऽनुपसर्गेकः'सूत्र से क प्रत्यय हुआ 'आदेच उपदेशेऽशिति' इससूत्र से आत्व किया आतो लोप इटियः इससे आ का लोप किया, फिर कामद सिद्ध हुआ। ऐसे कामदेव को नाश करने वाले रुद्र को मैं प्रणाम करती हूं। शिव स्वरूप रुद्र कामदेव को भस्म करने वाले हैं यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। अथवा आम् का अर्थ वाक्पति है। वाक्पति विद्यादेने वाले को कहते हैं।

घसेया: । पूर्वत्र अम्भावो मत्त, इहतु अमि तिरुद्रस्य विशेषणमिति न पौनरुक्त्यशङ्का कर्तव्या। एवं तत्तद्विशेषणेन स्वकृतप्रणामेन च रुद्रस्य महाप्रभाशालित्वं निरूपितं भवति । ननु तस्याःसाक्षादीश्वरत्वात्कथं तथा रुद्रस्य प्रणामः क्रियते इति चेच्छृणु लोकानां प्रवृत्तये तथाकरणस्यावश्यकत्वात्, तथा चोक्तम् गीतायाम् । यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते । न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि इति स्फुटं प्रति पाद्यते। यत् तथाभूतानां साक्षादीश्वरत्वेनावतीर्णानां न किञ्चिदपि प्रार्थनीयमस्ति तथापि तथाप्रवर्तनेन लोकानामास्तिकता तत्तत्कर्मणि विश्वासश्च समुत्पद्यत इति लोकस्योद्धराय तथा करणमित्यलमत्र पल्लवितेन। एवं च रुद्रोपासनामुक्त्वा हरिहरयोर्युगपदुपासनामाह—

अथवा सर्वसाधरण द्वारा दिखलाई न देने से 'अम्' शून्य है। इसी प्रकार अम् का नारायण, स्वराट्, अनङ्गकृत्, पाशबीज कालजिह्वा कालनिशा, पयोद, पाश, प्रतिष्ठा, प्रभाकर, मरुत् आदि अर्थ भी जानना चाहिए। यहाँ उनके विशेषण का फल और भावार्थ विस्तार के भय से नहीं कहा जाता है। पुनः वह रुद्र कैसा है – ह्रीम् इति अर्थात वह लक्ष्मी स्वरूप है। इससे उसकी उपासना लक्ष्मीप्रद होगी। फिर कैसा है? अम् बीज रूप है। अम् का अर्थ अनुत्तर होता है यह पहले हम् की व्याख्या में बतलाया जा चुका है। वहीं से इसका सारा अर्थ समझ लेना चाहिए। पहले अम् का अर्थ मत्त था और यहाँ शंकर का विशेषण है अतः पुनरुक्तिकी शंका नहीं उठती। इसीप्रकार इन विशेषणों से रुद्र का प्रणाम करने से उसकी विशेषता प्रमाणित होती है। परन्तु जगदम्बा के साक्षात् ईश्वर होने पर रुद्र का प्रणाम कैसा! उसका उत्तर होगा कि लोगों की रुद्रोपासना में प्रवृत्ति करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। गीता में कहा है कि गुरुजन जैसा आचरण करते हैं साधारण जन उसीका अनुसरण करते हैं। और हे अर्जुन इस

'संसृष्टः प्रणवमयः केशवः', केशवः विष्णुः प्रणवमयः प्रणव-स्वरूपः। प्रणवमयत्वकथनेन सर्वथा प्रणवरूपो विष्णुरिति सूच्यते। एवं च ॐ मित्यस्योपासना ॐ मिति मन्त्रजपश्च विष्णोरुपासना। स च प्रणवमयः केशव, संसृष्टः। केनेत्याकांक्षायां प्रत्यासत्त्या पूर्वंवर्णितेन सन्निकृष्टेन रुद्रेणेति स्वत एव लभ्यते। एवं च रुद्रेण संसृष्टः सर्वथा अभेदतया ऐक्यमापन्नः ॐ मितिस्वरूपो विष्णुरस्तीति तदर्थः। एवं च ॐ मितिप्रणवेन हरिहरयोरुपासना भवतीति सूचितं भवति। ननु ॐ मित्यत्र अ-उ-म्, इति वर्णत्रयमस्ति। ततश्च आद्गुण इति गुणे ओ इत्यस्य सिद्धिः, तत्र 'अकारो वासुदेवःस्यादित्यकारो विष्णुवाचकः, उकारः शंकरः प्रोक्तः' इत्युकारः शंकरवाचकः एवं ओकारे हरिहरावभेदतया विद्यमानौस्तः। मकारेण प्रतीमानो ब्रह्माऽपि

संसार में मेरे लिए कोई न तो कर्तव्य है और न तो अप्राप्य वस्तु है। केवल कार्य पालनमें संलग्न हूँ। इसप्रकार भगवान के साक्षात् अवतार कृष्ण के लिए कुछ भी कर्तव्य न होनेपर भी उनकी कर्मतत्परता लोगों की आस्तिकता और कर्म में लोगोके विश्वास के लिए है। अतः लोगों के उद्धारार्थ ही माँ की उक्तप्रकार की लोकचेष्टा है। रुद्रकी उपासना कह करके हरिहर की साथहीं उपासना कही गयी हैं। विष्णु संस्टष्ट प्रणव स्वरूप हैं। अतः ॐ की उपासना और जप विष्णु की ही उपासना है। वह प्रणव स्वरूप विष्णु समीप में ही वर्णित रुद्र से संस्टष्ट है। इसप्रकार रुद्र से संस्टष्ट सर्वथा अभेद स्वरूप ॐ विष्णु रूप है। इसप्रकार ॐ की उपासना से हरिहर दोनों की उपासना सिद्ध होती है। ओम् में अकार उकार तथा मकार तीन वर्ण है। अकार का अर्थ विष्णु और उकार का शंकर है। इस ओकार में हरिहर दोनों अभेद रूप से हैं मकार व्यंजन मात्रके एकाक्षर कोश में ब्रह्मा अर्थवाचक न होने से ब्रह्मा की प्रतीति ओम् से नहीं होती। और पुराणों में उसकी पूजा तथा आराधना भी नहीं पायी जाती अथवा ओम् में अन्त में अनु-

कथं नोच्यते इति चेच्छृणु एकाक्षरादिकोशे व्यञ्जनमात्रस्य मकारस्य ब्रह्मणो वाचकत्वाभावात् । पुराणादौ तत्पूजायास्तदाराधनस्य चाभावात्, किञ्च सवत्र प्रणवेषु अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः इति अनुनासिके ॐ इति सिद्धिः । व्यञ्जनमकारस्य प्रतीतिस्तु तदनुनासिकजन्यैव । एवं च । ॐ इति प्रणवेन अभेदतया विद्यमानौ हरिहरौ समुपास्स्वेति तदुपदेशः ।

मया मदीयहृदये स्तोत्रेरर्थः प्रकाशितः ।
प्रणौमि भूयस्तामेव मातरं लोकमातरम् ॥ ३ ॥

इति श्री सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्यावारिधि महामहोपाध्याय पं० मथुराप्रसाददीक्षित कृतौ मातृदर्शनाष्टपदीव्याख्या समाप्ता ॥

नासिक की ही प्रतीति होती है । व्यंजन मकार की नहीं । उसका तो अनुनासिक स्थान होने से आभास मात्र होता है । इसप्रकार ॐ इस प्रणव के द्वारा अभेद रूप से हरिहर की उपासना करने का उसका उपदेश है ।

अन्त में-जिस माँ की कृपा से मेरे हृदय में इन मन्त्रों का अर्थ प्रतिभासित हुआ है । उस अखिल जगत् की माता जगदम्बा को प्रणाम करता हूँ ।

इति मातृदर्शन हिन्दीभाष्य समाप्त ।

अनुवादक — पं० भवानी प्रसाद जी व्याकरणाचार्य
प्रधानाध्यापक
तारिणी संस्कृत महाविद्यालय—सोलन, शिमला ।

संस्कृतानुरागियोंके लिये अपूर्व अवसर

महाम[illegible]ध्याय पं० मथुराप्रसाद दीक्षित कृत ग्रन्थ

भारत वि[illegible]य नाटक—यह ऐतिहासिक तथा राजनीतिक नाटक बीसवीं शताब्दीमें अपने ढंगकी नि[illegible] रचना है। इसमें भारतमें अंग्रेजोंके आगमन, कूटनीति से भार[illegible] [illegible] [illegible]की राज्योंका अन्त, १८५७ का स्वातन्त्र्य आन्दोलन, कांग्रे[illegible] [illegible] तथा अन्त में भारतको काटकर महात्मा गांधी के हाथों भारतीय शास[illegible] [illegible]कर अंग्रेजोंका यहां से चले जाने का [illegible] बहुत ही सुन्दर और सरल संस्कृत में लिखा गया है।

इस रचना में सबसे अधिक महत्व का विषय यह है कि दीक्षित जी ने अपनी अभूतपूर्व नीतिकुशलता से अंग्रेजों की गतिविधि को समझ कर आज से दस वर्ष पूर्व ही देश को विभक्त कर इनका यहां से प्रयाण करना जनता के सामने रख दिया था। दीक्षितजी की यह भविष्यदर्शिता उनकी नीति-निपुणता का ज्वलंत प्रमाण है। इसलिये संस्कृतानुरागियोंके लिये यह नाटक परमोपादेय है। मूल्य केवल २) डांक व्यय पृथक्।

पाणिनीय-सिद्धान्तकौमुदी—महर्षि पाणिनिके समस्तसूत्रोंको यथापूर्व रखते हुए छात्रोंकी सुगमताके लिये श्रीभट्टोजीदीक्षितविरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीमेंसे अनावश्यक विषयोंको निकाल दिया गया है, जिससे पुस्तकका कलेवर सिद्धान्तकौमुदीकी अपेक्षा आधासे भी कम हो गया है। इसके सङ्कलनकर्ता का आशय नीचे लिखे पद्यसे ही स्पष्ट प्रतीत हो जायगा—

फक्किकागाढजटिलां वृत्तिविस्तारदुर्ग्रहाम्।
प्रत्युदाहरणैर्दीर्घां कौमुदीं संक्षिपाम्यहम्॥

इनके अतिरिक्त आपका "शंकर विजय नाटक" प्रकाशित हो रहा है और हिन्दी के आदि महाकवि "चन्दबरदाई" रचित समस्त 'पृथ्वीराजरासो' का हिन्दी अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

काशी के सभी बुक्सेलरों के यहां ये पुस्तकें मिलेंगी।

अमरवाणी यन्त्रालयः, अगस्त्यकुण्डम्, काशी।